

सात्वततन्त्रम्

आचार्य कृष्णानन्दसागरः

सा त्व त त न्व म्
SĀTVATA-TANTRAM

SĀTVATA-TANTRAM

Published by
Sri Mahaganapati
Sri Mahaganapati
Sri Mahaganapati



Shri Shivoham Sagar Granthmala's Eleventh Puspha



ŚRĪ MAHĀGAṆAPATI'S
SĀTVATA-TANTRAM

Published by
Sarvadarśanācārya
Śrī Kṛṣṇānanda Sāgara
Edited with Introduction

Under direction from
1008 Mahāmaṇḍaleśwara
Śrī Swāmī Akhaṇḍānanda Sāgara Mahārāja

श्रीशिवोऽहं सागरग्रन्थमालायाः एकादश पुष्पम्



श्रीमन्महापतिविरचितम् सात्वततन्त्रम्

अनन्तश्रीविभूषित १००८ महामण्डलेश्वर-
श्रीमदखण्डानन्दसागरमहाराजानां

निदेशेन
सर्वदर्शनाचार्यश्रीकृष्णानन्दसागरेण
भूमिकया सह संपाद्य
प्रकाशितम्

Published by

Acharya Krishnanand Sagar

D. 38-135

VARANASI-221010

And

Shri Madhvanand Ashram

P. O.-Dharmaj : Distt.-Kheda

GUJARAT.

All right reserved by the publisher

First Edition

1985

Price Rs :

Printed by

DEVVANI PRESS

Maldahia, Varanasi

भूमिका

भारतीय वैदिक विचारधारा में तन्त्रशास्त्र का एक प्रमुख स्थान है। तन्त्र की परम्परा अनादिकाल से चली आ रही है। वेदों के गूढार्थों का विस्तारपूर्वक वर्णन कर समझा गया है, जिन अर्थों का संक्षेप में व्याख्यान हुआ है उनका विश्लेषण किया है। अत एव वैदिक एवं तान्त्रिक विचारधारा ने ज्ञान की सरिता को अक्षुण्ण रखा है। ज्ञान, कर्म और भक्ति की त्रिवेणी ने युगानुयुग से इस भारतीय विमल संस्कृति को निरन्तर ज्ञान-प्रवाह से सींचा है। मनीषियों ने कर्म के गहन रहस्य को, ज्ञान की गरिमा को और भक्ति की निर्मल भावना को हृदय से आत्मसात् किया है तथा इस तान्त्रिक पावन परम्परा को महापुरुषों ने आज भी विच्छिन्न नहीं होने दिया। जैसा कि मनुस्मृति में कहा गया है—

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

यह तान्त्रिक विचारधारा भगवान् परम शिव से प्रारम्भ होती है। विश्व की समस्त विद्या शिव के सुखारविन्द से सर्वजनहितार्थ निकली हुई है। प्रस्तुत सात्वततन्त्र भी शिवपार्वती के संवादरूप में है। भगवान् आदि नारायण ने शिव को और शिव ने पार्वती एवं नारदादि मनीषियों को सुनाया है। जैसा कि—

‘यच्चोदितेन हलिना प्रागुक्तं चक्रपाणिना ।
पारम्पर्यागतं तन्मे गदतस्मृणुत द्विजाः ॥

(सा. सं. अ. १८)

तथा—

प्रथमं सात्वतं शास्त्रं सम्यगध्यापितं मया ।
वासुदेवेन यत्प्रोक्तं शास्त्रं भगवता स्वयम् ॥

(ई. सं. अ. ५४)

तथा—

तथापि सारमुद्धृत्य तन्त्ररूपेण नारद ।
वर्णयामि यथैवोक्तमीश्वरेण दयालुना ॥

(सा. व. प. ८)

इत्यादि प्रमाणों के द्वारा स्पष्ट ही हो जाता है। जैसे वेदों का पूर्वकल्पनीय आनुपूर्वी वस्तुतत्त्व का स्मरण कर आदि नारायण ने ब्रह्मादि देवों को उपदेश दिया था। इसी प्रकार तन्त्रशास्त्रों का भी पूर्वकल्पनीय आनुपूर्वी वस्तुतत्त्व का स्मरण कर शिव एवं नारदादिकों के प्रति उपदेश किया था। वेदों की भाँति तन्त्रशास्त्रों का भी अपौरुषेय निर्विवाद सिद्ध होता है। निर्णयसिन्धु आदि धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों की पर्यालोचन में अनेक स्थलों पर तन्त्रशास्त्र में विद्यमान वाक्यों का उल्लेख करने वाले ग्रन्थकारों ने तान्त्रिक अनुष्ठान करने योग्य पदार्थों का संग्रह स्मृतिसम्बन्धी पदार्थसंग्रह की भाँति आंशिक रूप में देखा भी जाता है। तन्त्रशास्त्रों में अनेक प्रकार के भेद पाये जाते हैं। जैसे—शैव, वैष्णव, सात्त्विक, तामसादि, वैदिक एवं अवैदिक। इसी प्रकार संहिता, आगम एवं रहस्य आदि के भेद से बहुत प्रकार की देखी जाती है। सात्त्विक आदि का भेद पञ्चरात्रान्तर्गत ईश्वर-संहिता में स्पष्ट प्रतीत होता है। जैसा कि—

विज्ञाय पुण्डरीकाक्ष अर्थजालं यथा स्थितम् ।
तदबोधकं प्रणीतं यच्छास्त्रं तत्सात्त्विकं स्मृतम् ॥
तस्मात् ज्ञानेऽर्थजाते तु किञ्चित्तदवलम्ब्य च ।
स्वबुद्ध्युन्मेशितस्यैव ह्यर्थजातस्य बोधकम् ॥
ब्रह्मादिभिः प्रणीतं यत्तथा तद्विभिर्द्विजा ।
ब्रह्मादिभिः परिश्रुत्य तत्संक्षेपात्मना पुनः ॥
स्वविकल्पात्प्रणीतं यत्तत्सर्वं राजसं स्मृतम् ।
केवलं स्वविकल्पोत्थैः कृतं यत्तामसं स्मृतम् ॥

वैष्णवतन्त्र भगवान् विष्णु की प्रधानता मान कर प्रवृत्त हुए हैं, शैवतन्त्र भगवान् शिव की प्रधानता मान कर प्रवृत्त हुए हैं; इसी प्रकार शाक्त शक्तितत्त्व की, गणपतितन्त्र गणपतितत्त्व की प्रधानता मान कर प्रवृत्त हुए हैं। वैदिक विधियाँ वेदोक्त अनुष्ठेय वस्तुतत्त्व से सम्बन्धित हैं, जिनकी सर्वोन्नयनतन्त्र के नाम से प्रसिद्धि है। अवैदिक विधियाँ तन्त्रशास्त्रीय प्रसिद्ध वस्तुतत्त्व से सम्बन्धित हैं, जिनकी महामाया, शाम्बरतन्त्र के रूप में ख्याति है। इस प्रकार वैदिक एवं अवैदिक विधियाँ दक्षिणमार्ग और वाममार्ग के रूप में विख्यात हैं। इन सभी तन्त्रशास्त्र के उपदेश वेदों की भाँति स्वतः प्रमाणरूप हैं। इसलिए कि इन सबका उपदेश शिव आदि देवताओं ने किया है। ये देश, काल आदि से रहित हैं और अधिकार-भेद से इनमें वस्तुतत्त्व का विशद वर्णन है, जिससे कि मुमुक्षुजन परमतत्त्व का साक्षात्कार जीवनकाल में ही कर सके। इसलिए ऐसे सतोगुणी तन्त्र का उपदेश भगवान् शिव ने पार्वती के प्रति किया था। जैसा कि कहा है—

‘आगतं शिववक्त्रास्तु गतं च गिरिजामुखे ।
मतं श्रीवासुदेवस्य आगमस्तेन कीर्तितः ॥

यह भगवान् श्रीकृष्ण को अत्यन्त प्रिय है। जिनमें सतोगुण की प्रधानता है और सदैव आन्तर में पवित्रभाव भरे हुए हैं, वे सात्वत लोग ही प्रकृति से परे श्रीकृष्ण परमात्मा का साक्षात्कार कर सकते हैं, उन्हीं को सतोगुणी वस्तु में प्रीति होती है और प्रकाशोन्मुख प्रवृत्ति होती है।

कैलास पर्वत के सुरम्य शिखर पर समासीन कल्याणकर भगवान् परमशिव ने सकलजन हितार्थ नारदमुनि के प्रति सात्वततन्त्र का उपदेश सुनाया था। नारदमुनि श्रीसदाशिव से जिज्ञासा करते हैं कि अद्भूत लीलाविग्रह भगवान् श्रीकृष्ण परमात्मा का तात्त्विक स्वरूप का मुझे उपदेश दीजिये। नारदमुनि की श्रीकृष्ण में भक्ति देख कर गद्गदभाव से धन्यवाद दिया और कहा कि ब्रह्मादि देवताओं के द्वारा श्रीकृष्ण परमात्मा का व्याख्यान सैकड़ों वर्षपर्यन्त करने पर भी अपूर्ण ही रहेगा। तथापि आंशिक रूप से ‘वक्ष्ये सात्वततन्त्राख्यं भगवद्भक्तिवर्द्धनम्,’ इस प्रकार शिव प्रतिज्ञा करते हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण से भिन्न अन्य कोई देव नहीं है, जिससे यह सारा संसार क्रमशः उत्पन्न हुआ है और स्थिति को प्राप्त हो कर उसी परमब्रह्मतत्त्व में समाहित हो जाता है। इसलिये सदा-सर्वदा भगवान् श्रीकृष्ण परमात्मा की भक्ति करना चाहिये। इस प्रकार नारदमुनि ने शिव के मुखारविंद से सात्वततन्त्र की कथा श्रवण की और नारदमुनि ने भी इसका सारांश नैमिषारण्यादि में विराजमान शौनकादि मुनियों के प्रति उपदेश किया और इन्होंने भी दूसरे तीर्थों में इसकी कथा सुनायी।

शिव-पार्वती के संवाद को भगवान् श्रीगणेश ने लिपिवद्ध किया। इस प्रकार अद्यावधिपर्यन्त सात्वततन्त्र का उपदेशक्रम हमलोगों के समक्ष अक्षुण्य देखने में आता है। इसका श्रवण, मननादि भगवद्भक्ति को बढ़ाने वाला है। इस लोकपावन कार्य में सुदूर रहकर भी श्रीदेवी मिनाक्षी ने सहयोग दिया है। भगवान् वासुदेव की निर्मल भक्ति हम सबको प्राप्त हो।

कृष्णानन्दसागर

निदेशिका

पृष्ठ संख्या

प्रथमः पटलः	१
द्वितीयः पटलः	५
तृतीयः पटलः	१६
चतुर्थः पटलः	२१
पञ्चमः पटलः	२८
षष्ठः पटलः	३३
सप्तमः पटलः	५०
अष्टमः पटलः	५५
नवमः पटलः	५८



श्रीसच्चिदानन्दाय नमः

अथ

सात्वततन्त्रम्

प्रथमः पटलः

श्रीसुत उवाच

य एको बहुधा कृष्णः सृष्ट्यादौ बहुधेयते ।
तमहं शरणं यामि परमानन्दविग्रहम् ॥१॥
कैलासशिखरासीनं शिवं शिवकरं परम् ।
नारदः परिप्रच्छ सर्वभूतहिते रतः ॥२॥
भगवन् श्रोतुमिच्छामि हरेरद्भुतकर्मणः ।
श्रीकृष्णस्याप्रमेयस्य नाना लीलातनूविभोः ॥३॥
यदर्थं यत्स्वरूपं च यद्यत्काले यथा रतः ।
गृह्णाति भगवान् स्वस्थस्तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥४॥
अवतारनिमित्तं यच्चिराद्विग्रहसम्भवम् ।
प्रथमं तत्त्वतो ब्रूहि त्वं परापरवित्तमः ॥५॥

श्रीशिव उवाच

साधु पृष्टं महाभाग त्वया भागवतोत्तम ।
यदहं नोदितः सम्यग्भगवद्दीर्यवर्णने ॥६॥
श्रीविष्णोरवताराणां विराजश्च महामते ।
कथने नैव पश्यामि पारं वर्षशतैरपि ।
तथापि सारमुद्धृत्य तन्त्ररूपेण नारद ॥७॥
वर्णयामि यथैवोक्तमीश्वरेण दयालुना ।
जयपूर्वं नमस्कृत्य गोपहृपिणमीश्वरम् ॥८॥
वक्ष्ये सात्वततन्त्राख्यं भगवद्भुक्तिवर्द्धनम् ।
यदासीदेकमव्यक्तं नित्यं चिद्रूपमव्ययम् ॥९॥

ब्रह्मेति यद्विदु वज्रा भगवानिति सात्वताः ।
 तदासन्तामिवात्मानं मत्वा दृष्ट्य विना विभुः ॥१०॥
 द्विप्रकारमभूत्सत्यं सत्ताभूत्वा स्वयं स्वयम् ।
 तच्चिच्छक्तिस्वरूपेण प्रकृतिः पुरुषो महान् ॥११॥
 सर्वलोकैकनिलयो भगवानिति शब्दयते ।
 तस्यैव शक्तिः प्रकृतिः कार्यकारणरूपिणी ॥१२॥
 गुणत्रयस्वरूपेण या स्वयं भिद्यते पुनः ।
 यः कालस्तं वदन्त्येके हरेश्चेष्टां दुरन्वयाम् ॥१३॥
 यस्यमाद्गुणत्रयक्षोभात्पृथग्भूतोऽभवत्पुरा ।
 जीवस्य यस्माद्भवति शुभाशुभफलग्रहः ॥१४॥
 तत्कर्म महतो जन्महेतुरव्यक्तमूर्तिमत् ।
 भावानां परिणामो हि यतो भवति सर्वदा ॥१५॥
 तमेवाहुर्वेदविदः सूक्ष्मरूपं स्वभावकम् ।
 उक्तोऽयं पुरुषः साक्षादीश्वरो भगवत्तनुः ॥१६॥
 कालकर्मस्वभावस्थः प्रकृतिं प्रति नोदितः ।
 पुरुषाधिष्ठिता देवी प्रकृतिर्गुणसङ्ग्रहा ॥१७॥
 महत्तत्त्वमभूत्तत्तत्परिज्ञानक्रियात्मकम् ।
 तस्माज्जातो ह्यहङ्कारस्त्रिविधो दैवनोदितात् ॥१८॥
 वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चैति यं विदुः ।
 वैजारिकान्मनोदेवा जाता ज्ञानक्रियाधिपाः ॥१९॥
 मरुत्केशो दिशः सूर्यो नासत्यो ज्ञाननोदकाः ।
 वह्नीन्द्रमित्रकोपेता एते कर्मापनोदकाः ॥२०॥
 राजसाद्विषयग्राहज्ञानकर्मस्वरूपिणः ।
 त्वग्रसज्जा श्रुतिश्चक्षुर्ग्राणं बुद्धिश्च तन्मयाः ॥२१॥
 वाक्पाणिपायूपस्थाश्च गतिश्चेति क्रियात्मकः ।
 तामसात्पञ्चभूतानि तन्मात्राणि च भागशः ॥२२॥
 प्रथमं तामसाज्जज्ञे शब्दस्तस्मादभून्नभः ।
 शब्दरूपात्तु नभसः स्पर्शस्तस्मादभून्मरुत् ॥२३॥

मरुतोऽभूत्तस्तेजसो रूपमुत्तमम् ।
 रूपमात्राद्रसो जज्ञे तस्मादापोऽभवन् शुचीः ॥२४॥
 अद्भुचो जातो गन्धगुणो गन्धादभूमिरजायत ।
 महत्तत्त्वमहङ्कारः सशब्दस्पर्शतेजसः ॥२५॥
 रसगन्धाविमे सर्वे स्मृता प्रकृतिविक्रयाः ।
 शब्दस्य प्रकृतेरेव संदृश्यन्ते यतो बुधैः ॥२६॥
 अतोऽभवन् प्रकृतयो विकारान् विकृतीविदुः ।
 आकाशे शब्दमात्रं स्याद्वायौ स्पर्शः सशब्दकः ॥२७॥
 रूपं तेजसि शब्दश्च स्पर्शश्चैव जले तथा ।
 रसशब्दस्पर्शरूपं पृथिव्यां सर्वमेव हि ॥२८॥
 कारणानां यतः कार्ये समन्वयविधिस्ततः ।
 दृश्यते त्वधिकस्तत्र गुणो यावति कश्चह ॥२९॥
 महदादीनि तत्त्वानि पुरुषस्य महात्मनः ।
 कार्यावताररूपाणि जानीहि द्विजसत्तम ॥३०॥
 सर्वाण्येतानि सङ्गृह्य पुरुषस्येच्छया यदा ।
 अंशैरुपादयामासुर्विराजं भुवमात्मकम् ॥३१॥
 तस्य चान्तर्गतं छिद्रं पञ्चाशत्कोटिविस्तृतम् ।
 दशोत्तराधिकैरेतैः सप्तभिर्बहिरावृतम् ॥३२॥
 तमाहुः पुरुषस्यैव गेहं यत्राविशत्स्वयम् ।
 यतोऽचेतनमेवासीत्केवलं सर्वविस्तरम् ॥३३॥
 नरादुत्पन्नतत्त्वानां सङ्ग्रहे नारसंज्ञके ।
 अयनं तस्य यदभूत्तस्मान्नारायणः स्मृतः ॥३४॥
 विराड्देहे यदवसद्भूगवान्पुरसंज्ञके ।
 अतः पुरुषनामानमवाप पुरुषः परः ॥३५॥
 यदा स भगवान्देवो मूलप्रकृतिविस्तरः ।
 नारायणेन रूपेण विरजमविशत्स्वयम् ॥३६॥
 तदा चेतनमापाद्य चिराद्विग्रह उत्थितः ।
 समष्टिशब्दतावाच्यो द्विसप्तभुवनाश्रयः ॥३७॥

यस्मिन् चराचरं भूतं लष्टा ब्रह्माहरेस्तनूः ।
 तत्र लोकमयं यावत्तं विराजे विदो विदुः ॥३८॥
 तस्याभिमानिनं जीतं वैराजं पुरुषाभिधम् ।
 तदन्तर्यामिणं देवं नारायणमनामयम् ॥३९॥
 सर्वजीवैकनिलयं भगवन्तं प्रचक्षते ।
 अवतारसहस्राणां निधानं बीजमव्ययम् ॥४०॥
 यस्यांशेन रजोयुक्तः सृष्टौ ब्रह्मा व्यजायत ।
 विष्णुः सत्त्वगुणाधीशः स्थितौ स्थापयितुं जगत् ॥४१॥
 तमसा रुद्ररूपोऽभूत्प्रतिसञ्चरणो विभुः ।
 एते विष्णोर्गुणमया अवताराः क्रियाकृताः ॥४२॥
 एषामंशावतारान्मे निबोध गदतो मम ।
 ब्रह्मणोऽंशेन समभून्मरीचिरत्रिरङ्गिराः ॥४३॥
 पुलस्त्यः पुलहश्चैव क्रतुर्दक्षो द्विजोत्तम ।
 भृगुर्वसिष्ठोऽथर्वा च कर्दमाद्याः प्रजेश्वराः ॥४४॥
 एषां पुत्राश्च पौत्राश्च तथेन्द्राद्याश्च देवताः ।
 विष्ण्वंशयुक्ता लोकानां पालकाः कथिता मया ॥४५॥
 रुद्रस्यांशेन शतशो जाता रुद्रगणाः पृथक् !
 सर्पाश्च शतशो जाता ये च हिंसाः स्वभावतः ॥४६॥
 एते संक्षेपतः प्रोक्ता रुद्रस्यांशास्तमोजुषः ।
 संहारिणोऽस्य जगतो घोररूपा विलक्षणाः ॥४७॥
 अथ ते सम्प्रवक्ष्यामि लीलादेहान् हरेः पृथक् ।
 शुद्धसत्त्वमयान् शान्तान् लोकप्रेमास्पदान् शृणु ॥४८॥
 य ईश एको भगवाननन्तो ब्रह्मस्वरूपी पुरुषोऽधियज्ञः ।
 पातुं पुनर्विश्वमसौ स्वकार्यं भजे तनूस्तं प्रणमामि कृष्णम् ॥४९॥
 इति श्रीसात्वततन्त्रे शिवनारदसंवादे प्रथमः पटलः ॥

अथ

द्वितीयः पटलः

श्रीशिव उवाच

साक्षाद्भुव भगवान् परिपातुमीशो
वेदान् युगादिसमये ह्यशीर्षनामा ।
हत्वा सुरेतरवरौ मधुकैटभाख्यौ
नस्तश्चकार विश्रुतोः श्रुतिभिर्विमृग्यः ॥१॥

लोकान्निवृत्तिपरतां प्रविकीर्षुरादौ
भूत्वा चतुःसनतया भगवान् विमुक्त्यै ।
प्रोवाच योगममलंविशदाशयेभ्यो
भोगान् विरक्तिपरतां स्वयमाचचार ॥२॥

देवेषु नारदतनुर्भगवान् विशुद्धं
नैष्कर्म्ययोगमवहत्खलु पाञ्चरात्रम् ।
धर्मं तथा भगवता कथितं विशेष-
शिष्येष्वसौ परमनिर्वृतिमादधानम् ॥३॥

आदौ दधार धरणीधरणाय धातुः
स्वायम्भुवोक्तिपरिपालककाल एव ।
नारायणोऽखिलगुरुर्गुरुकोलदेहं
तेनाहनद्वितिमुतं दशनाग्रधातैः ॥४॥

भूमेरधो धरणिमण्डलमप्रमेयः
शेषाख्य आस जगतः स्थितये नितान्तम् ।
यस्मिन्कलापितमिदं लिखितचक्रास्ति
नागाधिपैर्मुनिगणैः परिसेविताङ्घ्रिः ॥५॥

तस्मादधः कमठ आस विशालरूपी
अह्नाण्डभाण्डपरिविस्तृतदिव्यकायः ।
शेषोऽपि यत्र परिभाति सुतन्तुतुल्यो
यं चार्यमा पितृपतिः समुपासते वै ॥६॥

दृष्ट्वा दृशार्द्धवयसापि विहाय मातु-
देहं ध्रुवं मधुवने तपसाभितप्तम् ।

भूत्वा कृपामयवपुर्भगवान्स्वलोकं
प्रादात्स्तुवन्ति यतयो मुनयोऽपि यं वै ॥७॥

आलोक्य कर्दमतपो भगवान् विभूत्यै
संशुद्धदिव्यवपुषाविरभूत् सशुक्लः ।

तस्मा अदाद्वरमजात्मजपुत्ररूप--
मानन्दविन्दुपयसा च चकार तीर्थम् ॥८॥

यज्ञे स एव रुचिना मनुपुत्रिपुत्र
आहूतिसूतिरसुरारणिवह्निकल्प ।
त्रैलोक्यगोपानविधौ सुरनाथ ईश
नाम्ना सुयज्ञ इति विश्रुतकीर्तिराशिः ॥९॥

सिद्धेश्वरश्च समभूत्कपिलाख्य ईशः
श्रीदेवहूतितनयो विततान तस्यै ।
योगं स्वशक्तिसहितं चितचिद्विभागं
साङ्ख्येयंतथास्वाभिमुखेषु जगाद शुद्धम् ॥१०॥

योगेश्वरोऽत्रितनयो भगवाननन्तो
दत्ताख्य आस समतावदत्स्वचर्याम् ।
प्रह्लादहैहययदुष्वपरायणेषु
शिष्येषु शिक्षितकथां कथयन् गुरुभ्यः ॥११॥

नारायणो नर ऋषिप्रवरावभूतां
धर्मस्य दक्षदुहितर्यधिभूतिपत्न्याम् ।
धीरोपकारकरुणाशयकायशुद्धं
तीव्रं तपः प्रचरतां सुरराजतापम् ॥१२॥

नाभेरभूदृषभसंज्ञसदाप्रकामो
योगेश्वरः सुतशतैरवदत्प्रजाभ्यः ।
धर्मं ततः परमयोगिजनावचर्यां
नैऋत्यलक्षणपरां स्वयमाचचार ॥१३॥

धात्रन्तिके सुसनकादिभिरीर्यमाणे
चेतोगुणान् विगलितुं भगवान्स हंसः ।

प्रोवाच तत्त्वममलं सद्यार्द्रचित्ता
 यस्माद्गुणागुणविभागमभून्मुनीनाम् ॥१४॥
 वेने मृते द्विजजनैरनु बाहुयुग्मं
 सम्मथ्यमानसमये पृथुरूप आसीत् ।
 लोकक्षुधां प्रशमयन् पृथिवीं दुदोह
 सर्वाणि भूतिकरणानि च सर्वभूत्यै ॥१५॥
 दक्षस्य यज्ञविहिते शिवशक्तिहेतोः
 प्राप्ताज्यभामसधिकं भृगुणाभिदत्तम् ।
 तत्राष्टबाहुरभवद्भुगवान् भवाय
 प्राप्ता नुतिः सुरनरादिकृतापि तेन ॥१६॥
 जातः प्रियव्रतकुले गय इत्युदार-
 कीर्तिं ततान भगवान् तनुवाङ्मनोभिः ।
 तेनापि यज्ञतनुरीश्वर इन्द्ररूपी
 स्पृष्ट्वा चकार महतां मदमादधानः ॥१७॥
 संवत्सरस्य तनयः स ह यामिनीना-
 मालोकनादिविविधं मुदमाचिकीर्षुः ।
 श्रीकामदेववर्षा ह्यवतीर्य देवो
 देव्योमया मदनकेलिभिरारराम ॥१८॥
 प्राचीनर्वाहितनयांस्तपसा सुतमान्
 दृष्ट्वा स्वशान्तवपुषाविरभूदनन्तः ।
 दत्त्वा स्वपादभजनं वसतां गृहेषु
 कन्यां च वृक्षजनितामद्दिशद्दयालुः ॥१९॥
 स्वरोचिषे तुषितया द्विजवेदशीर्ष-
 उजातो विभुः सकलधर्मभृतां वरिष्ठः ।
 यद्रवह्यार्चयनियमानृषयोऽप्यशिक्ष-
 साक्षाज्जगद्गुरुतयावचचार शुद्धान् ॥२०॥
 धर्मादभूत्सुततया भगवांस्तृतीये
 मावन्तरे त्रिजगतेः स्थितये कृपालुः ।

श्रीसत्यसेन इति दुर्जनयक्षरक्षान्
यस्तानपाहरदसौ सुरनाथमित्रः ॥२१॥

तुर्येऽन्तरे सरसि वारणराजराजं
ग्राहेण तोव्रबालना परिकर्षयन्तस् ।
नारायणेत्यभिहिते हरिरुद्धधार
तस्माद्भ्रुवाणवजलादपि देवराजः ॥२२॥

वैकुण्ठ आस भगवान् द्विजवर्य मुद्रा(?)
देव्या मया तदनुरूपजयाभिधानः ।
वैकुण्ठदर्शनमकारयदप्रमेय--
स्तस्याउ पञ्चममनोःसमये प्रसिद्धम् ॥२३॥

षष्ठेऽन्तरे तु भगवान् द्विजशोपखिन्न-
देहान्पुरानवनतानवलोक्य सन्नः ।
वैराजविप्रतनयोऽजितसंज्ञ ईशो
देवासुरैरमथयत्सहसा पयोधिम् ॥२४॥

देवासुरे जलनिधेमथनाद्विषण्णे
हस्ताच्च्युते गिरिवरे सहसार्द्रचित्तः ।
भूत्वा तु कूर्मवपुरद्भुतमुद्धधार
मेने च पर्वतविवर्त्तनगात्रकण्डूम् ॥२५॥

दुग्धाम्बुघावुरुक्तां प्रचिकीर्षुरीश
आदाय पूर्णकलशं सुधया नितान्तम् ।
आयुर्विधाननिगमं खलु यज्ञभोक्ता
धन्वन्तरिः समभवद्भ्रुगवान्नराणाम् ॥२६॥

धन्वन्तरेरमृतपूर्णघटे स्ववारा
क्षूर्णीयमान अमरे शरणं प्रविष्टे ।
मोहिन्यभूत्स भगवानसुरासुराणां
मोहाय तापविरमाय सदाप्रकामः ॥२७॥

सत्यव्रताय जनतर्पणतः स्वरूपं
मात्स्यं महाकरुणया प्रवितत्य सद्यः ।

कल्पाणवेऽप्यवददच्युत आत्मतत्त्वं
भूरूपनाविवसते विहरन् द्विजेभ्यः ॥२८॥

त्रैलोक्यदुःखदलनाय नृसिंहरूपं
कृत्वा स्वभक्तमवितुं किल लाङ्गलाग्रैः ।
घृत्वाऽसुरेन्द्रमसुरेन्द्रविशालतीव्र-
वक्षस्थलं स्थलमिवाग्रनखैर्ददार ॥२९॥

यस्मिन्प्रपश्यति बलिः सगणं त्रिलोकं
तेनापि वामतनुं भगवान् गृहीत्वा ।
संयाच्य सम्मितपदत्रितयं बलेः स्वं
कृत्वा त्रिविष्टपमदाददितेः सुतेभ्यः ॥३०॥

भक्तानहं समनुवर्त इति स्ववाचं
साक्षात्प्रकर्तुं नैव भूविचरे प्रविष्टः ।
वैरोचनेर्गृहमरक्षयदप्रमेयो
नाम्ना गदाधर इति क्षपयन् दयावान् ॥३१॥

भूत्वा तु भार्गवकुले निजतातनाशा-
द्रामो महापरशुकं परिगृह्य तीक्ष्णम् ।
क्षत्रं निवार्य क्षितितल परिहृत्य भूयो
दत्त्वा द्विजाय ह्यवसत्स महेन्द्रपृष्ठे ॥३२॥

वृन्दारकैः परिनिषेवितपदपद्मः
श्रीरामचन्द्र इति सूर्यकुलाब्धिजातः ।
देवारिनाशनविधौ कुशिकान्वयेन
नीतो महेशधनुराजगवं बभञ्ज ॥३३॥

ज्ञात्वा ततो भृगुकुलोद्भवधीरवीरं
रामं सुगौररुचिरां परिणीय सीताम् ।
गत्वा गृहान् गृहपतेः पितुराप्तजाया-
वाचं निशम्य वनवासमगात्सभार्यः ॥३४॥

तीर्त्वा गाङ्गपयोऽनुजानु गमनाच्छ्रीचित्रकूटं गिरिं
त्यक्त्वा दुष्टविराधराधदमनो धावन् धनुर्धारयन् ।

हत्वा क्रूरसुरेन्द्रवैरिहरिणं मारीचसंज्ञं ततो
लङ्केशाहतसीतया खलु पुनः प्राप्तो दृशामीदृशाम् ॥३५॥

चन्द्रं चण्डकरं प्रचण्डधवनं मेने सुमन्दानिलं
मालां मालतिमल्लिकां शुचिकलां गीतं स्फुलिङ्गायितम् ।
इत्येवं वनितापरायणनरं हास्यन्निवालोक्तयन्
ऋक्षं मन्मथसायकाहतमनो रेमे प्रियाशङ्कया ॥३६॥

गत्वा वानरराजवालिभमहामित्रेण सेतुं ततो
बध्वा वारिधिमातरत्तरतमं साकं प्लङ्गैर्भुदा ।
छित्त्वा राक्षसयक्षलक्षममला सीता सपुत्रानुजं
लङ्केशं ज्वलदग्निना भगवता चाप्ता पुनः सा पुरी ॥३७॥

सूर्यादिशक्तिमविहृत्य शशास भूमि
गोविप्रप्राज्ञपरिसेवनसर्वधर्मः ।
उद्विक्तभक्तिममितानन्यतस्त्वनाथान्
सर्वान् वनाधिवसतः स्वपदं सुशान्तम् ॥३८॥

तस्यानुजो भरतसंज्ञ उदारबुद्धी
रामाज्ञया निजगृहे निवसन्नपि श्रीम् ।
त्यक्त्वा वनस्थव्रतवानभवत्ततो वै
गन्धर्वकोटिमथनं विहरँश्चकार ॥३९॥

श्रीलक्ष्मणस्तदवरो वनमेत्य रामं
सीतां निषेव्य तपसा बहुकष्ट आसीत् ।
बाह्योपि चास्य वचसा वनमेत्य देहं
सन्त्यज्य तत्पदमगादरिसैन्यवह्निः ॥४०॥

शत्रुघ्नसंज्ञ उरुविक्रमशुद्धबुद्धिः
शौर्येण दर्पदलनो द्विषतां दयालुः ।
दीनेषु दैत्यलवणान्तक आर्घ्यसेवी
स्वान्येषु साम्यमतिराजनताभिरामः ॥४१॥

माकर्ण्डनाममुनये भुवनादि देष्टुं
मायालये तनुतरे जठरे मुकुन्दः ।

न्यग्रोधपत्रपुटकोषशयान आसी-
दङ्गुष्ठपानपरमः शिशुरप्रमेयः ॥४२॥

वृत्रस्य घोरवपुषा परितापितानां
संरक्षणाय भगवान् युधि निर्जराणाम् ।
आद्यो ह्यभूद्गरुडकिन्नरगीतकीर्ति-
स्तेषां सुदुःखभयशोकविनाशशीलः ॥४३॥

अङ्गुष्ठपर्वसुमितान् श्रमणान् द्विजान् यान्
दृष्ट्वा तु गोष्पदपयोगतसर्वदेहान् ।
ब्रह्मण्य इन्द्रहसितान्समिदंशुहस्तान्
गुर्वर्चनाय कृपयाऽऽवदमून्प्रपन्नान् ॥४४॥

दुष्यन्तबीजमधिगम्य शकुन्तेलायां
जातो ह्यजोऽपि भगवानधिपज्ञकर्तृन् ।
विस्मापयन्बहुनृपान् बहुवाजिमेधान्
साक्षाद्विजाय बहु दानमदादमेयः ॥४५॥

सर्वान् जनान्कलियुगे बलबुद्धिहीनान्
दृष्ट्वा कृपापरवशो वसुवीर्यजायाम् ।
जातः पराशरसकाशत आदिदेदो
वेदान्समाहिततया विभजिष्यति स्म ॥४६॥

वृष्णे कुले तु भगवान् बलदेवनामा
यस्माद्वलानतिबलानदलत्सुरारीन् ।
यत्लाङ्गलाग्रकलनात् कुरुराजधानी
धानेव धामसहिता चलितातिभीता ॥४७॥

भूमेर्जनस्य निजपादपरायणस्य
वृष्णेरजोऽपि भगवान् सुखमादधानः ।
जातो भविष्यति यशो विपुलं प्रकर्तुं
श्रीकृष्ण इत्यभिहितोऽखिलशक्तिपूर्णः ॥४८॥

जातो निजेन वपुषा वसुदेवगेहे
गत्वा तु गोकुलमथो विहरन् विनोदैः ।

बालाकृतिविशदबालकभाषासै-

गोंगोपगोपवनितामुदमाशु कर्ता ॥४९॥

कंसानुशिष्टसुरशत्रुगणानुलूकी

मुख्यान् हनिष्यति व्रजस्थितये महाद्रिम् ।

धृत्वोच्छिलोन्ध्रमिव सप्त दिनानि वाम

हस्ते प्रगृह्य सुरनाथमदं प्रमार्ष्टा ॥५०॥

धात्रा यदा सपशुगोपशिशौ प्रणीते

बुद्धेभ्रमो हलभृतोऽभवदप्रमेयः ।

तत्संहरन् सपशुपालकुलस्वरूपं

कृत्वा विधिं विविधमोहमलात्स धर्ता ॥५१॥

वृन्दावने सुरभिवाद्यविलासगीतै-

गोंधुगवधूजनमनोजजवं दधानः ।

कर्ता महामदनकेलिविहारगोष्ठी-

विस्मापनं निशि निशाचरखेचराणाम् ॥५२॥

कंसस्य रङ्गसदनं सबले प्रणीते

स्वा फल्किना भवधनुस्तरसा विभज्य ।

चाणूरशूरशमनं सहकंसमाजौ

कर्ता द्विपं कुवलयं सहसा निहत्य ॥५३॥

सान्दीपनं मृतसुतं गुह्यदक्षिणार्थी

दत्त्वा जरासुतबलं यवनं च हत्त्वा ।

श्री रुक्मिणीप्रभृतिदारशतं दिवाह्य

ताभ्यः सुतान् दशदशानु जनिष्यति स्म ॥५४॥

भौमं निहत्य सगणं दिवि देवमातु-

र्दातुं तदीयमणिकुण्डलमादिदेवः ।

गत्वा सुरेन्द्रतरुजवरं प्रियायाः

प्रीतौ समुद्धरणतो दितिजान्स जेता ॥५५॥

बाणासुरस्य समरे मम वीर्यनाशा-

ल्लब्धामरत्वमधिकं युधि भूपबन्धून् ।

जित्वा युधिष्ठिरनृपक्रतुना विवाह-
 बीजं निपात्य गुरुभारतरं प्रहर्ता ॥५६॥

लोके प्रदर्श्य सुतरां द्विजदेवपूजां
 स्वस्याप्यपारकरुणां निजसेवकेभ्यः ।
 त्रात्वा परीक्षितनृपं परमास्त्रदग्धं
 पार्थाय भूतिमवलोकयिता द्विजार्थे ॥५७॥

कामेन स्नेहभयरागकुटुम्बसन्धे
 यस्मिन्मनो निवसतः शमलं निरस्य ।
 दाता स्वरूपममलं परिशुद्धभावः
 साक्षात्स्वरूपनिरतस्य च किन्नु वक्ष्ये ॥५८॥

यत्पादपङ्कजपरागपरायणाना-
 मग्रे चकास्ति न च मुक्तिसुखं नितान्तम् ।
 किं वान्यदर्पितभयं खलु कालवेगैः
 साक्षान्महासुखसमुद्रगतान्तराणाम् ॥५९॥

गङ्गादितीर्थतपहोमव्रतादिकेभ्यः
 कीर्तिं स्वकीयमधिकां समुदीर्य लोके ।
 अत्युन्नतं द्विजकुलं द्विजशापव्याजा-
 द्धत्वा स्वलोकममलं तनुनाभिगन्ता ॥६०॥

तस्माद्भूविष्यति सुतः सुभदो जननां
 प्रद्युम्नसञ्ज्ञ उरु गायगुणानुरूपः ॥६१॥

कर्ता मुदं मुदितवक्रसुचारुगात्रैः
 पात्रैरिवामृतपथ मनुजान्प्रच्छन् ।
 तत्राप्यजोऽनुजनितापप्यनिरुद्धनामा-
 नाम्नां प्रवर्तकतया मनसीश्वरोऽरि ॥६२॥

यस्मादुषाऽऽहरणतो भुजवीर्यनाशा-
 द्बाणो भविष्यति शिवानुगशान्तदेहः ।
 व्यासाद्भूविष्यति भगवानरण्यां
 योगी जनान्प्रति गदिष्यति वेदसारम् ॥६३॥

श्रीमत्सुशान्तममलं भगवत्प्रणीतं
 यच्छ्रद्धया कलिजना अपि यान्ति शान्तिम् ।
 बुद्धावतारमधिगम्य कलावलक्षे--
 वैषेर्भतेरतिविमोहकरं प्रलोभम् ॥६४॥

पाखण्डशास्त्रमधिकल्प्य सुरद्विषाणां
 कर्ता जिनस्य तनयो भगवान्गयायाम् ।
 पाखण्डशास्त्रबहुले निजवेदमार्गे
 नष्टे द्विजातिभिरसत्पथि वर्तमाने ॥६५॥

कल्पयावतारतरणिस्तैरुणान्धकार--
 तुल्यं तुदन्नृपगणं कृतधर्मगोप्ता ।
 साक्षाद्भूविष्यति सरस्वतिसंज्ञितायां
 श्रीसार्वभौम इति वेदगुपो द्विजाग्न्यात् ॥६६॥

कृत्वा पुरन्दरश्रियं बलयेऽतिदास्यन्
 गोप्ताष्टमे मनुयुगे विदितानुभावः ।
 आयुः करो नवमनोः समये जनानां
 नीतिं विधातुममरारिविनाशनाथ ॥६७॥

गोप्ता भविष्यति जगज्जनधारयासौ
 भूत्वा श्रुतेन्द्रसहितो भगवानपारः ।
 भूत्वा विशूचिसदने द्विजराजशम्भोः
 साहित्यकर्मपरवान् दशमेऽन्तरे सः ॥६८॥

पाताऽमरान् विश्वक् सेनसंज्ञो
 यत्सैन्यपूगसमरादमरारिनाशः ।
 मन्वन्तरैक दशमेऽर्थकरिप्रपौत्रः
 श्रीधर्मसेतुरिति विश्रुत आदिदेवः ॥६९॥

हत्वाऽसुरान् सुरपतौ विधृतेरपत्ये
 दाता तृतीयभवनं भगवान्स्वयम्भूः ।
 जातो द्विषण्मनुयुगे युगपालनाथ
 विप्रात्स्वशक्तिमहसः सुनृत्ताख्यतो वै ॥७०॥

ख्यातो भविष्यति ततो भगवान्स्वधामा

यस्माज्जना जगति सौख्यमपारमापुः ।

भाव्ये त्रयोदशयुगे भविताऽऽदिदेवः

श्रीदेवहोत्रतनयो भगवान्बृहत्याम् ॥७१॥

योगेश्वरो दिवि दिवस्पतिशक्रमित्रो

योगदमेयवपुषा स वितानतुल्यः ।

सत्रायणस्य सदने भगवाननादि-

देवोऽपि देववनितातनयोऽभिजातः ॥७२॥

अन्तेऽन्तरे करणकर्मविताननन्तुन्

विस्तारयिष्यति जगद्धितकामशीलः ।

एते मया भगवतः कथिता द्विजाते

शुद्धावतारनिचया जगतो हितार्थाः ।

सम्पूर्णतांशकलया परिभाबनीया

ज्ञानक्रियाबलसमाधिभिराभिव्यक्ताः ॥७३॥

यत्लीलातनुभिर्नित्यं पालयते सचराचरम् ।

तमहं शरणं यामि कृष्णं ब्रह्माण्डनायकम् ॥७४॥

इति श्रीसात्त्वततन्त्रे द्वितीयः पटलः ॥

अथ

चृत्तीयः पटलः

श्रीनारद उवाच

कथिता भगवान्विष्णोरवतारा महात्मनः ।
सम्पूर्णाशकलाभेदैर्भावनीयास्त्वयः प्रभो ॥१॥
निर्विकल्पस्य कृष्णस्य ब्रह्मणः परमात्मनः ।
कथमंशकलाभाग एतद्वर्णय नो विभो ॥२॥

श्रीशिव उवाच

सत्यमुक्तं त्वया ब्रह्मन् कृष्णस्य जगदात्मनः ।
अवतारेषु सर्वेषु भेदादंशकलाः स्वतः ॥३॥
न वर्णयन्ति निपुणा ज्ञानिनो भगवत्पराः ।
अविकारादच्युताच्च निर्भेदाद्ब्रह्मरूपिणः ॥४॥
किन्तु ज्ञानप्रभावादेः पूर्णांशांशानुदर्शनात् ।
पूर्णमंशकलाभागं वदन्ति जगदीशितुः ॥५॥
सन्ति यद्यपि सर्वत्र ज्ञानवीर्यगुणादयः ।
तथापि कार्यतः केचिद्दृश्यन्ते नहि सर्वतः ॥६॥
ऐश्वर्यज्ञानधर्माश्च वैराग्यं श्रीर्यशस्तथा ।
एषां सन्दर्शनात्साक्षात्पूर्णो विद्वद्भिरुच्यते ॥७॥
एतेषामपि भागानामल्पाल्पदर्शनादसौ ।
विभात्यंशकलाभेदो भगवान्भगभेदधृक् ॥८॥
अंशस्तुरीयो भागः स्यात्कला तु षोडशी मता ।
शतभागो विभूतिश्च वर्ण्यते कविभिः पृथक् ॥९॥
अतो ज्ञानस्य धर्मस्य वैराग्यैश्वर्ययोः श्रियः ।
यशसः पृथग्भेदं मत्तः शृणु द्विजोत्तम ॥१०॥

उत्पत्तिप्रलयौ चैव विद्याविद्ये गतागती ।
 एषां ज्ञानं वदन्त्यङ्गं ज्ञानं षड्विधमुत्तमम् ॥११॥
 सत्यं शौचं दया मौनं धर्मश्चातुर्विधः स्मृतः ।
 अमानो व्यतिरेकश्च ऐन्द्रियस्तु वशीकृतः ॥१२॥
 एवं चतुर्विधो भद्र वैराग्यस्समुदाहृतः ।
 अणिमा लघिमा चैव महिमा तदनन्तरम् ॥१३॥
 प्राकाम्यं चैव प्राप्तिश्च ईशिता वशिता तथा ।
 कामस्यावसिता ह्येते अष्टैश्चर्याः प्रकीर्तिताः ॥१४॥
 भृत्यामात्यमुहद्वन्द्वपुत्रपौत्रकलत्रकाः ।
 वासोभूषणकोषाश्च सेनिका चतुरङ्गिणी ॥१५॥
 गृहा भूरस्त्रशस्त्रे च दुर्गाद्याः श्रिय ईरिताः ।
 यशस्तु पुंसो भवति कर्मतो गुणतस्तथा ॥१६॥
 कर्म चतुर्विधं प्रोक्तं सृष्टिस्थितिलयात्मकम् ।
 तथा लीलावताराणां चेरितं परमाद्भुतम् ॥१७॥
 गुणान्यपरिमेयाणि कीर्तितानि मनीषिभिः ।
 तथाप्यहं द्विषठीं ते वर्णयाम्यनुपूर्वशः ॥१८॥
 ब्रह्मण्यश्च शरण्यश्च भक्तवात्सल्यमेव च ।
 दातृत्वं सत्यसन्धत्वं विक्रान्तत्वं नियम्यता ॥१९॥
 दुर्जयत्वं दुस्सरत्वं निषेव्यत्वं सहिष्णुता ।
 अक्षोभ्यत्वं स्वतन्त्रत्वं नैरपेक्ष्यं स्वसौष्ठवम् ॥२०॥
 शौर्यमौदार्यमास्तिक्यं स्थैर्यं धैर्यं प्रसन्नता ।
 गाम्भीर्यं प्रश्रयः शीलं प्रागल्भ्यामृतमङ्गलम् ॥२१॥
 शमो दमो बलं दाक्ष्यं क्षेमं हर्षोऽनहङ्कृतिः ।
 सन्तोष आर्जवं साम्यं मनोभाग्यं श्रुतं मुखम् ॥२२॥
 त्यागो भयं पावनं च तेजः कौशलमाश्रयः ।
 धृतिः क्षमा स्मृतिर्लज्जा श्रद्धा मैत्री दयोन्नतिः ॥२३॥
 शान्तिः पुष्टिः स्ववाक् शुद्धिर्बुद्धिर्विद्या स्वरक्षता ।
 एते ते भगभेदास्तु कथिता ह्यनुपूर्वशः ॥२४॥

एषां प्रकाशो यत्रासीत्स पूर्णः परिकीर्तितः ।
 अंशप्रकाशादंशः स्यात्कलायास्तु कला स्मृता ॥२५॥
 विभूतेस्तु विभूतिः स्यादेव भेदो न हि स्वतः ।
 निविकल्पस्य सत्यस्य परब्रह्मस्वरूपिणः ॥२६॥
 नारायणस्य शुद्धस्य श्रीकृष्णस्य महात्मनः ।
 यतः कृष्णावतारेण भगभेदाः पृथक् पृथक् ॥२७॥
 सन्दर्शिताः पृथक्कार्ये तस्मात्सम्पूर्ण उच्यते ।
 हयग्रीवाद्यवतारे तस्मादल्पतरा यतः ॥२८॥
 दर्शिता भगभेदा वै तस्मादंशाः प्रकीर्तिताः ।
 यतो रामो मत्स्यकूर्मवराहा नरकेशरी ॥२९॥
 मन्वन्तरावताराश्च यज्ञाद्या हयशीर्षवान् ।
 तथा शुक्लादयो ह्याविर्भाव ऋषभ आत्मवान् ॥३०॥
 नरनारायणो दत्तः कलौ च बुद्धकल्किनौ ।
 ज्ञानकर्मप्रभावाद्यैरंशा विष्णोः प्रकीर्तिताः ॥३१॥
 कुमारनारदव्यासा ब्रह्मरातादयः कलाः ।
 ज्ञानांशयुक्ताः श्रीविष्णोरवतारा महात्मनः ॥३२॥
 गयः पृथुश्च भरतः शक्तियुक्ताः कला मताः ।
 गुणावतारा ब्रह्माद्यास्तदंशा ये विभूतयः ॥३३॥
 एषा मया ते कथिता सम्पूर्णांशकलाभिदा ।
 कार्यानुरूपा विप्रेन्द्र भगभेदप्रदर्शनात् ॥३४॥
 न ब्रह्मणो भिदा विप्र श्रीकृष्णस्य च सत्तम ।
 नारायणस्य वा सौम्य ह्यवतारिस्वरूपिणः ॥३५॥

श्रीनारद उवाच

अवतारिस्वरूपं मे वर्णयस्व सदाशिव ।
 किं ब्रह्म परमं साक्षात्किं वा नारायणो विभुः ॥३६॥
 किं वा वैकुण्ठलोकेशः श्रीकृष्णः पुरुषोत्तमः ।
 किमेकतत्त्वमेतेषामथवा किं पृथक् पृथक् ॥३७॥

श्रीशिव उवाच

शृणु तत्परमं गुह्यं ब्रह्मदायाद सत्तम ।
 अवतारिस्वरूपं मे यथावर्णयतो द्विज ॥३८॥
 एकमेव परं तत्त्वमवतारि सनातनम् ।
 श्रीकृष्णब्रह्मपुरुषैः संज्ञाभिर्दीयते पृथक् ॥३९॥
 यथा भानोः प्रकाशस्य मण्डलस्यापृथक्स्थितिः ।
 तथा श्रीकृष्णदेवस्य ब्रह्मणः पुरुषस्य च ॥४०॥
 अतः सात्वततन्त्रज्ञा भक्तिनिष्ठा विलक्षणाः ।
 श्रीकृष्णाख्यं परं धाम परमानन्दमुत्तमम् ॥४१॥
 वैकुण्ठलीकनिलयं शुद्धसत्त्वात्मविग्रहम् ।
 वदन्ति शाश्वतं सत्यं स्वभक्तगणसेवितम् ॥४२॥
 वेदान्तिनो ज्ञाननिष्ठा ज्ञानशास्त्रानुसारतः ।
 वदन्ति ब्रह्म परमं प्रकाशात्मकमव्ययम् ॥४३॥
 अपाणिपादनयनश्रोत्रत्वग्घ्राणविग्रहम् ।
 सर्वशक्तियुतं तेजोमयं वाङ्मनसापदम् ॥४४॥
 आनन्दमात्रं संशुद्धं चिद्व्यक्तं सर्वप्रकारणम् ।
 हैरण्य गर्भस्त्रैविद्या नारायणमनामयम् ॥४५॥
 सहस्रशिरसं देवं परमानन्दमव्ययम् ।
 अनन्तशक्तिं सर्वेषां पुरुषं प्रकृतेः परम् ॥४६॥
 वदन्ति कर्मपरमाः स्थित्युत्पत्त्यन्तभावनम् ।
 सर्वानन्दकरं शान्तं संसारार्णवतारकम् ॥४७॥
 अतः कृष्णस्य देवस्य ब्रह्मणः पुरुषस्य च ।
 वस्तुतो नैव भेदो हि वर्ण्यते तैरपि द्विज ॥४८॥
 यथार्थो बहुधा भाति नानाकरणवृत्तिभिः ।
 तथा स भगवान्कृष्णो नानेव परिचक्षते ॥४९॥
 अतः सर्वमतेनापि श्रीकृष्णः पुरुषोत्तमः ।
 लीलामानुषरूपेण देवकीजठरं गतः ॥५०॥

अतः सर्वावताराणां कारणं कृष्ण उच्यते ।
 सृष्ट्याद्यनेककार्याणि दर्शितानि यतः स्वतः ॥५१॥
 स एव सर्वलोकानामाराध्यः पुरुषोत्तमः ।
 मुक्त्याद्यर्थं नृलोकस्य मानुषत्वं यतो गतः ॥५२॥
 अतस्तं पुरुषा नित्यं भक्तिभेदेन नित्यदा ।
 भजन्ति ह्यपवर्गेशं परेशं तदकाम्यया ॥५३॥
 मया ते कतिथा विप्र अवतारा महात्मनः ।
 किमन्यत्कथयाम्यद्य त्वं हि भागवतोत्तमः ॥५४॥

इति श्रीसात्वततन्त्रे तृतीयः पटलः ॥

अथ

चतुर्थः पटलः

श्रीनारद उवाच

नास्ति तृप्तिः शृण्वतो मे तव वागमृतं हरेः ।

यशः परमकल्याणमवतारकथाश्रयम् ॥ १ ॥

तथापि साम्प्रतं ह्येतच्छ्रुत्वा कौतूहलं मम ।

भक्तिभेदं भगवतो भावनीयं सदा नृभिः ॥ २ ॥

ब्रूहि मे भगवन् विष्णोर्भक्तिभेदं सदाशिव ।

यज्ज्ञात्वा ह्यञ्जसा विष्णोः साम्यं याति जनप्रभो ॥ ३ ॥

श्रीशिव उवाच

साधु पृष्टं त्वया साधो परं गुह्यतमं यतः ।

अन्यस्मै न मया प्रोक्तं विना भागवतान्नरात् ॥ ४ ॥

यदैवावोचं मां कृष्णो ध्यानात्तुष्टमना विभुः ।

तदैवाहं निषिद्धाऽस्मि अभक्तोक्तौ कृपालुः ॥ ५ ॥

तदा चाहं तस्य पादपङ्कजे शिरसा नतः ।

बभाष एतद्भूगवान् भक्तान्निर्द्वेष्टुमर्हसि ॥ ६ ॥

तदा प्रीतमना देवो मामुवाच सतां गतिः ।

शृणुष्व शिव भद्रं ते भक्तान् वक्ष्यामि सात्वतात् ॥ ७ ॥

मद्विद्यानिष्ठान्मत्प्राणान्मद्यशःश्रवणोत्सुकान् ।

भक्तान् जानीहि मे देव सर्वलोकप्रणामकान् ॥ ८ ॥

तेभ्यः परमसन्तुष्टो भक्तिभेदं ससाधनम् ।

ब्रवीमि शिव ते भक्तिस्तेनैव सम्प्रसिद्धयति ॥ ९ ॥

यदित्वद्वाक्यनिष्ठः स्याद्योऽपि कोऽपि सदाशिव ।

तस्मै प्रीतमना वाच्यो भक्तिभेदः ससाधनः ॥ १० ॥

तदिदं ते प्रवक्ष्यामि भक्तिभेदं ससाधनम् ।
 यतो भागवतश्रेष्ठो भगवत्कीर्तनप्रियः ॥११॥
 एकैव भक्तिः श्रीविष्णोः प्रीतिरित्युच्यते बुधैः ।
 निर्गुणत्वादखण्डत्वादानन्दत्वाद्विजोत्तम ॥१२॥
 किन्तु ज्ञानक्रियालीलाभेदैः सा त्रिविधा मता ।
 तान् शृणुष्वानुपूर्व्येण मत्तः स्वावहितो द्विज ॥१३॥
 सर्वान्तर्यामिणि हरौ मनोगतिरविच्युता ।
 सा निर्गुणज्ञानमयी साक्षादपि गरीयसी ॥१४॥
 सर्वोन्द्रियाणां सर्वेशे विष्णौ गतिरनुत्तमा ।
 स्वाभाविकी भागवती कर्मजा मुक्तिहेलिनी ॥१४॥
 हरिलीलाश्रुतोच्चारे जाता प्रेममयी तु या ।
 सत्सङ्गजान्यासादग्राह्या सर्वदा साह्यनुत्तमा ॥१६॥
 तासां साधनसामग्री क्रमतः शृणु सत्तम ।
 यामाश्रित्य समाप्नोति जनो भक्तिजनार्दने ॥१७॥
 स्वानुरूपस्वधर्मेण वासुदेवार्पणेन च ।
 हिंसारहितयोगेन भगवत्प्रतिमादिषु ॥१८॥
 श्रुतिदृष्टिस्पर्शपूजास्तुतिप्रत्यभिनन्दनैः ।
 विषयाणां विरागेण स्वगुरोः परिचर्यया ॥१९॥
 निवृत्तिशास्त्रश्रवणैरुत्तमेषु क्षमादिभिः ।
 समेषु मित्रभावेन दीनेषु दयया तथा ॥२०॥
 भगवन्मूर्त्यभिध्यानैर्यशसां श्रुतिकीर्तनात् ।
 भूतेषु भगवद्दृष्ट्या निर्गुणा भक्तिरुच्यते ॥२१॥
 लब्ध्वा तां निर्गुणां भक्तिं मुक्तिं चापि न मन्यते ।
 मुक्तिः सैवेत्यभिहिता भगवद्भावकारिणी ॥२२॥
 अथ भागवतीभवतेः साधनं शृणु सत्तम ।
 यत्तद्व्ययत्नतः कार्यं पुरुषेण मनीषिणा ॥२३॥
 श्रीगुरोरुपदेशेन भगवद्भक्तितत्परैः ।
 यथाकार्यं स्वकरणैर्भगवत्पादसेवनम् ॥२४॥

वाचोच्चारोहरेनस्मिन् कर्णाभ्यां कर्मणां श्रुतिः ।
 हस्ताभ्यां भगवद्देहप्रतिमादिषु सेवनम् ॥२५॥
 जिह्वया भगवद्दत्तनैवेद्यहरणं मुदा ।
 नासया कृष्णपादाब्जलग्नगन्धानुजिघ्रणम् ॥२६॥
 भगवद्गात्रनिर्मल्य हरणं शिरसा तथा ।
 दृष्ट्वा विष्णुजनादीनामीक्षणं सादरेण च ॥२७॥
 मनसा भगवद्रूपचिन्तनं शिरसोरसा ।
 बाहुपादादिभिर्विष्णोर्वन्दनं परया मुदा ॥२८॥
 अर्थादीनामानयनमीश्वरार्थेन सर्वशः ।
 एतैः स्वसाधनैर्नित्यं भगवत्पादसेवनम् ॥२९॥
 आशु सम्पद्यते भक्तिः कृष्णे भागवती सती ।
 यदेन्द्रियाणां सर्वेषां कृष्णे परमपूरुषे ॥३०॥
 स्वाभाविकी रतिरभूत्सा वै भगवती माता ।
 एतद्भक्तिपरो विप्र चातुर्वर्ग्ये न मन्यते ॥३१॥
 तस्यामन्तः सर्वमुखमधिकं वापि लभ्यते ।
 अथ प्रेममयीभक्तेः कारणं द्विजसत्तम् ॥३२॥
 शृणु विश्वासमापन्नो निश्चयात्मिकया धिया ।
 सद्गुरोरुपदेशेन लब्ध्वा सत्सङ्गमाहतः ॥३३॥
 चतुर्विधानां श्रीविष्णोः कर्मणां श्रवणं सताम् ।
 तेष्वेवं कीर्तनं तेषां मनसा चापि चिन्तनम् ॥३४॥
 वचसा ग्रहणं तेषां तत्पराणां प्रशंसनम् ।
 यद्यशक्तो भवेत्कीर्त्तौ स्मरणे चापि सर्वशः ॥३५॥
 तदा तु भगवन्नाम्नामावृत्तौ (ति) वृत्त (वर)येत्सदा ।
 सदा शश्वत्प्रीतियुक्तो यः कुर्यादितदन्वहम् ॥३६॥
 तस्याशु भक्तिः श्रीकृष्णे जायते सद्भिरादृता ।
 एवं प्रेममयीं लब्ध्वा भित्त्वा संसारमात्मनः ॥३७॥
 आशु सम्पद्यते शान्ति परमानन्ददायिनीम् ।
 लब्ध्वापि भक्ता भगवद्रूपशीलगुणक्रियाः ॥३७॥

नानुसन्धत्त एता वै विना भक्तिं जनार्दने ।
 यद्यन्यसाधनान्यन्यभक्तौ कुर्यादतन्द्रितः ॥३९॥
 न तत्र कश्चिद्दोषः स्याद्वरिसेवा यतः कृता ।
 किन्तु यद्भक्तिनिष्ठा स्यात्तामेवाप्नोति मानवः ॥४०॥
 फलभेदेन भेदः स्यात्साधनेन न भिद्यते ।
 पृथगेष्ट मयाऽऽख्यातो भक्तिभेदः ससाधनः ॥४१॥
 निष्कामः फलरूपश्च नित्यो मोक्षमुखाधिकः ।
 सकामः सगुणो विप्र बहुधोक्तो महर्षिभिः ॥४२॥
 किं भूयः कथयाम्यद्य वद मां द्विजसत्तम ।

श्रीनारद उवाच

विधेयं कथितं सर्वं त्वया मे मुरमुत्तम ।
 निषेधनीयं किं चात्र भक्तिस्तम्भकरं च यत् ॥४३॥
 हानिवृद्धिकरं चापि मुख्यसाधनमेव च ।
 कथयस्व महादेव श्रद्धासेवापराय मे ॥४४॥

श्रीशिव उवाच

भक्तीनां साधनानां यद्बहिर्भूतं महामुने ।
 निषेधनीयं तत्तासां भक्तानां पुरुषोत्तमे ॥४५॥
 देहप्रवाहादाधिक्यं विषयादरणं च यत् ।
 भक्तिस्तम्भकरं प्रोक्तं भक्तिनिष्ठे द्विजोत्तम ॥४६॥
 समासेन मया प्रोक्तं निषेधस्तम्भनं तव ।
 भक्तिघ्नदोषं शृणु तं सर्वथा वर्जनं नृणाम् ॥४७॥
 निगुणायां प्राणिहिंसा भागवत्यामहङ्कृतिः ।
 प्रेममध्यां सतां द्वेषो भक्तिनाशकरा इमे ॥४८॥
 सर्वभक्तिव्यतिकरः स्वगुरोर्वागनादरः ।
 द्वेषेण नरकं याति कुर्वन् भक्तिमपि द्विजः ॥४९॥
 दोषदृष्ट्या दोषवान् स्यात्तत्र दोषफलं भवेत् :
 मर्त्यदृष्ट्या कृतं सर्वं भवेत्कुञ्जरशौचवत् ॥५०॥

सर्वसाधनमुख्या हि गुरुसेवा सदादृता ।
 यया भक्तिर्भगवति ह्यञ्जसा स्यात्सुखावहा ॥५१॥
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गुरोर्वागादरेण वै ।
 कार्या सैव तु तत्सर्वा भगवद्भक्तिवर्द्धिनी ॥५२॥
 निर्गुणाभक्तिनिष्ठेन कार्या भूतदया सदा ।
 भागवत्यां कायमनोवचसां परिनिष्ठिता ॥५३॥
 प्रेममध्यां सतां प्रीत्या श्रवणं यशसां हरेः ।
 मुख्याः साधनत्रयस्त्यः कथितास्ते द्विजोत्तम ॥५४॥
 सर्वमूलं कृष्णपादशरणं परिकीर्तितम् ।
 यद्विना स्तवते भक्तिरामभाण्डाय यथा ॥५५॥

श्रीनारद उवाच

कृष्णपादाब्जशरणं वद मे बहुवित्तम् ।
 विना येन पुमान् याति कुर्वन् भक्तिमपि श्रमम् ॥५६॥

श्रीशिव उवाच

कायवाङ्मनसां साक्षात्कृष्णे परमपूरुषे ।
 परिनिष्ठाऽऽश्रयं यद्वै शरणं परिकीर्तितम् ॥५७॥
 एतद्वै त्रिविधं प्रोक्तं वेदविद्विद्विजोत्तम ।
 प्रथमं मध्यमं श्रेष्ठं क्रमशः शृणु तन्मुने ॥५८॥
 धर्मे तीर्थे च देवादौ रक्षकत्वमघादितः ।
 यद्बुद्धिनिष्ठितं कृष्णे कृतं तत्प्रथमं स्मृतम् ॥५९॥
 कलत्रपुत्रमित्रेषु धने गेहगवादिषु ।
 यन्ममत्वाश्रयं कृष्णे कृतं तन्मध्यमं स्मृतम् ॥६०॥
 देहादावात्मनो यावदात्मत्वाश्रयणादि यत् ।
 तत्सर्वं कृष्णपादाब्जे कृतं श्रेष्ठं प्रकीर्तितम् ॥६१॥
 ईश्वरं तदधीनं च तद्धर्मं च सनातनम् ।
 हित्वान्यदाश्रयं तस्य वस्तुतो नैव दृश्यते ॥६२॥

एतच्छरणसम्पन्नो भक्तिमान्पुरुषोत्तमे ।
 पुनाति सर्वभुवनं हृदिस्थेनाच्युतेन सः ॥६३॥
 तस्माद्भुक्तादृतेर्विष्णोर्देहोऽपि नैव सत्प्रियः ।
 किमुतान्ये विभूताद्याः परमानन्दरूपिणः ॥६४॥

श्रीनारद उवाच

भक्तानां लक्षणं साक्षाद्ब्रूहि मे सुरसत्तम ।
 तथैव तेष्वहं प्रीतिं करिष्यामि समाहितः ॥६५॥

श्रीशिव उवाच

भक्तानां लक्षणं साक्षाद्ब्रूविज्ञेयं नृभिर्मुने ।
 वैष्णवैरेव तद्वेद्यं पदान्यहिरहेरिव ॥६६॥
 तथापि सारतस्तेषां लक्षणं यदलौकिकम् ।
 वक्ष्ये तत्ते मुनिश्चेष्ट विष्णुभक्तो यतो भवान् ॥६७॥
 मच्चित्ता निरहङ्कारा ममकारविवर्जिताः ।
 शास्त्रानुवर्तिनः शान्ताः सुहृदः सर्वदेहिनाम् ॥६८॥
 यदा सर्वेषु भूतेषु हिंसन्तमपि कञ्चन ।
 न हिंसन्ति तदा मुक्ता निर्गुणा भगवत्पराः ॥६९॥
 हरिसेवा विना किञ्चिन्मन्यते नात्मनः प्रियम् ।
 वासुदेवपरा देहगेह इन्द्रियवृत्तयः ॥७०॥
 रागद्वेषादिरहिता सानामानविवर्जिताः ।
 सदा सन्तुष्टमनसो भक्ता भागवता मताः ॥७१॥
 सत्प्रीतिपरमाः शुद्धाः श्रुतिकौतुह्युक्तिनिष्ठिताः ।
 त्रैवर्गिकपराऽऽलापस्नेहसङ्गविवर्जिताः ॥७२॥
 सद्वाक्यकारिणः कृष्णयशस्युत्पुकमानसाः ।
 हरिप्रीतिपरा एते भक्ता लोकप्रणामकाः ॥७३॥
 भक्तानां लक्षणं ह्येतत्सामान्येन निरूपितम् ।
 इदानीमात्मजिज्ञास्यं लक्षणं त्रिविधं शृणु ॥७४॥
 सर्वात्मानं हरिं ज्ञात्वा सर्वेषु प्रीतिमान्नरः ।
 सेवापरो द्वेषहीनो जनेषु स च सत्तमः ॥७५॥

ज्ञात्वापि सर्वगं विष्णुं तारतम्येन प्रीतिमान् ।
 श्रेष्ठमध्यमनीचेषु ह्यात्मनः स तु मध्यमः ॥७६॥
 प्रतिमादिष्वेव हरौ प्रीतिमान्न तु सर्वगे ।
 प्राणिप्राणवधत्यागी प्राकृतः स तु वैष्णवः ॥७७॥
 यस्येन्द्रियाणां सर्वेषां हरौ स्वाभाविकी रतिः ।
 स वै महाभागवतो ह्युत्तमः परिकीर्तितः ॥७८॥
 यस्य यत्नेनेन्द्रियाणां विष्णौ प्रीतिर्हि जायते ।
 स वै भागवतो विप्रः मध्यमः समुदाहृतः ॥७९॥
 यस्येन्द्रियैः कृष्णसेवा कृता प्रीतिर्विर्जिता ।
 स प्राकृतो भागवतो भक्तः कामविर्जितः ॥८०॥
 हरिलीलाश्रुतोच्चारं यः प्रीत्या कुरुते सदा ।
 स वै महाभागवतो ह्युत्तमो लोकपावनः ॥८१॥
 श्रवणं कीर्तनं विष्णौ प्रीत्यायासौ तु यो नरः ।
 कुर्याद्विहरहः शश्वत् प्रीतिमान् स च मध्यमः ॥८२॥
 यामैकमात्रं यः कुर्याच्छ्रवणं कीर्तनं हरेः ।
 प्रीत्या विष्णुजनद्वेषहीनः प्राकृत उच्यते ॥८३॥
 यद्यन्यलक्षणं चान्यभक्ते लक्ष्येत सज्जनैः ।
 तथापि निष्ठाभालक्ष्य तं तं जानीहि सत्तम ॥८४॥
 यद्धर्मनिष्ठा ये भक्ता भवन्ति द्विजसत्तम ।
 तत्प्रसङ्गाद्यनुष्ठानं तत्प्रीतेः कारणं परम् ॥८५॥
 तथापि निर्गुणा ये च ये च भागवता मताः ।
 तेषु प्रीतिर्महाभाग दुष्करेति मयोच्यते ॥८६॥
 हरिलीलाश्रुतोच्चारपरेषु सततं त्वया ।
 कार्या प्रीतिस्तव हरेर्यथा भक्तिर्न नश्यति ॥८७॥
 इत्येतत्कथितं विप्र साधूनां पृथक्पृथक् ।
 भक्तेषु प्रीतिकरणं जनानां मुक्तिकारणम् ॥८८॥
 साधनेन मया बाल भक्ति भेदो निरूपितः ।
 स सार्ववर्णिकः शुद्ध सर्वाश्रमिश्रमापहः ॥८९॥
 सर्वकालभवो नित्यः सर्वदैशिकसिद्धिदः ।
 चतुर्युगेष्वभिमतो भगवत्प्रियसाधकः ॥९०॥
 इति सात्वततन्त्रे चतुर्थः पटलः ॥

अथ

पंचमः पटलः

श्रीनारद उवाच

कथितं मे सुरगुरो भगवद्भक्तिलक्षणम् ।
चतुर्गुणैस्त्यभिमतं सर्वलोकसुखावहम् ॥ १ ॥
अधुना वद देवेश जनानां हितकाम्यया ।
युगानुरूपं श्रीविष्णोः सेवया मोक्षसाधनम् ॥ २ ॥
प्रजानां लक्षणं विष्णोर्मूर्तिलिङ्गं पृथग्विधम् ।
धर्मं च नामसङ्ख्या च समासेन सुरेश्वर ॥ ३ ॥

श्रीशिव उवाच

कृते युगे प्रजाः सर्वाः शुद्धा रागादिवर्जिताः ।
औत्पत्तिकेन योगेन शान्ताः शमदृशो मताः ॥ ४ ॥
तेषां तु भगवद्ध्यानं संसारार्णवतारकम् ।
तदेव परमो धर्मस्तदयुगस्य महामते ॥ ५ ॥
तद्ध्यानं त्रिविधं प्रोक्तं दशभिर्नामभिर्युतम् ।
निरालम्बं सावलम्बं सर्वा तर्कमिधारणम् ॥ ६ ॥
तत्षडङ्गयुतं कुर्यात्समाध्यवधिमुत्तमम् ।
दुःखग्रहं निरालम्बं प्रथमं शृणु सत्तम ॥ ७ ॥
अहिंसा ब्रह्मचर्यं व सत्यं लज्जा ह्यकार्यतः ।
अस्तेयोऽसञ्चयो मौनमसङ्गमभयं दया ॥ ८ ॥
धर्मं स्थैर्यं च विश्वासो यमा द्वादश सत्तम ।
यमाद्यमङ्गं प्रथमं कुर्याद्विधाता ह्यतन्द्रितः ॥ ९ ॥

देहशौचं मनःशौचं जाप्यं होमं तपो व्रतम् ।

श्राद्धमतिशुश्रूषां तीर्थसेवां सुतुष्टिदाम् ॥ १० ॥

परार्थेहां गुरोः सेवां द्विषडनियमसंज्ञितम् ।

कुर्याद्विद्यानं तृतीयाङ्गं च मे शृणु ॥ ११ ॥

स्वजानुग्रे पादग्रे कुर्याज्जङ्घेऽन्तरान्तरे ।

उत्सङ्गमध्ये हस्तौ द्वौ तत्स्थानमासनं स्मृतम् ॥ १२ ॥

प्रणवेनैव मन्त्रेण पूरकुम्भकरेचकैः ।

विपर्ययेण वा कुर्यात्तुर्ग्याङ्गं प्राणसंयमम् ॥ १३ ॥

विषयेभ्यस्त्विन्द्रियाणां संयमं मनसा हृदि ।

कुर्यादनन्वितो योगी प्रत्याहारं तु पञ्चमम् ॥ १४ ॥

प्राणेन मनसः साक्षात्स्थैर्यं ध्यानाङ्गमुत्तमम् ।

कुर्यात्समाहितो योगी स्वनासाप्रावलोकनः ॥ १५ ॥

तेजोमयं स्वप्रकाशमवाङ्मनसागोचरम् ।

लक्षीकृत्य धिया तिष्ठेद्यावन्नैव प्रकाशते ॥ १६ ॥

एवं चाहरहः कुर्वन्योगी संशुद्धकित्विषः ।

चिरात्प्राप्नोति परमां समाधिं ब्रह्मणः पदम् ॥ १७ ॥

सावशेषं हरेर्ध्यानिं शृणु विप्र समासतः ।

तेनैव विधिना युक्तो मनसा चिन्तयेद्यथा ॥ १८ ॥

हृत्पद्मकर्णिकामध्ये शुद्धसत्त्वतनुं हरिम् ।

पुरुषं चतुर्भुजं ध्यायेच्छुद्धस्फटिकसन्निभम् ॥ १९ ॥

जटाधरं वल्कलिनं कृष्णसारजिनोत्तरम् ।

अक्षमालां यज्ञसूत्रं तथा दण्डकमण्डलम् ॥ २० ॥

बिभ्राणं हृदयुगाराध्यं ब्रह्मचारिणमव्ययम् ।

मुखारविन्दं सुनसं सुभ्रुवं सुकपोलिनम् ॥ २१ ॥

सुवर्णशकलाभातं सुद्विजं कम्बुकन्धरम् ।

दीर्घायतद्वतुर्बाहुं करपल्लवशोभितम् ॥ २२ ॥

सुचक्षुषं सुहृदयं सुदरं बलिभिर्युतम् ।
 निम्ननाभिं सुचारुहजानुजङ्घापदं शुभम् ॥ २३ ॥
 चार्वङ्गुलिदलाकारं नखचन्द्रद्युतिप्रभम् ।
 एवं चिन्त्यतो रूपं विष्णोर्लोकमनोहरम् ॥ २४ ॥
 तस्याशु परमानन्दस्सम्पदाशु भविष्यति ।
 आशुसिद्धिकरं चातस्सर्वान्तर्यामिधारणम् ॥ २५ ॥
 शृणुष्ववहितो विप्र मानस्तम्भविवर्जितम् ।
 सर्वं चराचरमिदं भगवद्रूपधिष्ठितम् ॥ २६ ॥
 भावयेद्देषहीनेन कायवाङ्मनसा द्विज ।
 उत्तमानन्दमानयेद्भक्त्या समान्त्रितया द्विज ॥ २७ ॥
 अधमानन्दयया शत्रूनुपेक्षेत दयान्वितः ।
 एवं भावयतस्तस्य यावत्सर्वात्मदर्शनम् ॥ २८ ॥
 अचिरान्परमानन्दसन्दोहः मनसाऽऽप्नुयात् ।
 त्रेतायां प्राणिनः सर्वे जपहोमपरायणः ॥ २९ ॥
 सुविनीताः सुखावृत्ता महाशाला महात्मनः ।
 तेषां तु भगवद्यागो ह्यञ्जसा मुक्तिसाधकः ॥ ३० ॥
 स एव परमो धर्मस्त्रेतायां द्विजसत्तम ।
 तस्मिन्यजन्ति रक्ताभं यज्ञमूर्तिं जगद्गुरुम् ॥ ३१ ॥
 नित्यनैमित्तिकैः सत्रैर्यागैर्नामाष्टकायुतैः ।
 त्रैविद्येन विधानेन यान्ति मुक्तिं तदा जनाः ॥ ३२ ॥
 द्वापरे तु जना हृष्टाः पुष्टाः कर्मकृतिक्षमाः ।
 भोगानुसक्तमनसः सुखदुःखसमावृताः ॥ ३३ ॥
 भगवत्पूजनं तेषां मोक्षसाधनमुत्तमम् ।
 साङ्गोपाङ्गं केवलं च द्विविधं पूजनं स्मृतम् ॥ ३४ ॥
 तदेव परमो धर्मो द्वापरस्य युगस्य वै ।
 तस्मिन्यजन्ति पुरुषा महाराजोक्तलक्षणम् ॥ ३५ ॥

पीतवर्णं वेदमन्त्रैर्नाम्नां द्वादशभिः समम् ।
 कलौ प्रजा मन्दभाग्या अलसा दुःखसंयुताः ॥ ३६ ॥
 शिशनोदरपराः क्षुद्रा दीना मलिनचेतसः ।
 तेषामेकविधं प्रोक्तमञ्जसा मुक्तिकारणम् ॥ ३७ ॥
 सर्वसौख्यकरं चापि कृष्णनामानुकीर्तनम् ।
 यतः कलियुगस्यादौ भगवान्पुरुषोत्तमः ॥ ३८ ॥
 अवतीर्य यशस्तेने शुद्धं कलिमलापहम् ।
 ध्यानयोगक्रियाः सर्वाः स संहृत्य दयापरः ॥ ३९ ॥
 स्वकीये यशसि स्थाप्य गतो वैकुण्ठमुत्तमम् ।
 स तात परमो देवो देवकीदेविनन्दनः ॥ ४० ॥
 इन्द्रनीलसमः श्यामस्तन्त्रमन्त्रैर्य इज्यते ।
 तस्मिन् कलियुगे विप्र श्रुत्वा हरियशोऽमलाः ॥ ४१ ॥
 प्रायो भक्ता भविष्यन्ति तस्माच्छ्रेष्ठयुगः कलिः ।
 अतः कृतादिषु प्रजाः कलौ सम्भवमात्मनः ॥ ४२ ॥
 वाच्छन्ति धर्मपरमा भगवद्भक्तिकारणम् ।
 ध्यानेनेष्ट्या पूजनेन यत्फलं लभ्यते जनैः ॥ ४३ ॥
 कृतादिषु कलौ तद्वै कीर्तनादिषु लभ्यते ।
 न देशकालकर्तृणां नियमः कीर्तने स्मृतः ॥ ४४ ॥
 तस्मात्कलौ परो धर्मो हरिकीर्तः सुकीर्तनम् ।
 यतः कलिं प्रशसन्ति शिष्टास्त्रियुगवर्तिनः ॥ ४५ ॥
 यत्र कीर्तनमात्रेण प्राप्नोति परमं पदम् ।
 कृतादावपि ये जीवा न मुक्ता निजधर्मतः ॥ ४६ ॥
 तेऽपि मुक्तिं प्रयास्यन्ति कलौ कीर्तनमात्रतः ।
 कलेर्दोषसमुद्रस्य गुण एको महान् यतः ॥ ४७ ॥

नाम्नां सङ्कीर्तनेनैव चातुर्वर्गं जनोऽश्नुते ।
 कृतादिष्वपि विप्रेन्द्र हरिनामानुकीर्तनम् ॥ ४८ ॥
 तपादिसाध्यं तद्भूयः कलाबुभयतां गतम् ।
 तस्मात्कलियुगे विष्णोर्नामकीर्तनमुत्तमम् ॥ ४९ ॥
 साधनं भक्तिनिष्ठानां साध्यं चैव प्रकीर्तितम् ।
 येन केनापि भावेन कीर्तयन् सततं हरिम् ॥ ५० ॥
 हित्वा पापं गतिं यान्ति किमुतच्छ्रद्धया गृणन् ।
 कलौ नामपरा एव सततं द्विजसत्तम ॥ ५१ ॥
 उक्ता महाभागवता भगवत्प्रियकारिणः ।
 तस्मात्सर्वात्मना विप्र कुरु श्रीकृष्णकीर्तनम् ॥ ५२ ॥
 श्रद्धया सततं युक्त एतदेव महाफलम् ।

इति श्रीसात्वततन्त्रे पञ्चमः पटलः ॥

अथ

षष्ठः पटलः

श्रीनारद उवाच

कथितं मे त्वया देव हरिनामानुकीर्तनम् ।
पापापहं महासौख्यं भगवद्भक्तिकारणम् ॥ १ ॥
तत्राहं यानि नामानि कीर्तयामि सुरोत्तम ।
तान्यहं ज्ञातुमिच्छामि साकल्येन कुतूहलात् ॥ २ ॥

श्रीशिव उवाच

भूम्यम्बुतेजसां ये वै परमाणूनपि द्विज ।
शक्यन्ते गणितुं भूयो जन्मभिर्न हरेर्गुणान् ॥ ३ ॥
तथापि मुख्यं वक्ष्यामि श्रीविष्णोः परमाद्भुतम् ।
नाम्नां सहस्रं पार्वत्यै यद्विहोक्तं कृपालुना ॥ ४ ॥
समाधिनिष्ठं मां दृष्ट्वा पार्वती वरवर्णिनी ।
अपृच्छत्परमं देवं भगवन्तं जगद्गुरुम् ॥ ५ ॥
तदा तस्यै मया प्रोक्तो मत्परो जगदीश्वरः ।
नाम्नां सहस्रं च तथा गुणकर्मानुसारतः ॥ ६ ॥
तदहं तेऽभिवक्ष्यामि महाभागवतो भवान् ।
यस्यैकस्मरणेनैव पुमान् सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ७ ॥

उद्यन्नवीनजलदाभमकुण्ठधिष्यं

विद्योतितानलमनोहरपीतवासम् ।

भास्वन्मयूखमुकुटाङ्गदहारयुक्तं

काञ्चीकलापवलयान्जुलिभिर्विभातम् ॥ ८ ॥

ब्रह्मादिदेवगणवन्दितपादपद्मं

श्रीसेवितं सकलसुन्दरसन्निवेशम् ।

गोगोपवनितामुनिवृन्दजुष्टं

कृष्णं पुराणपुरुषं मनसा स्मरामि ॥ ९ ॥

ॐ नमो वासुदेवाय कृष्णाय परमात्मने ।
 प्रणतक्लेशसंहर्त्रे परमानन्ददायिने ॥ १० ॥
 ॐ श्रीकृष्णः श्रीपतिः श्रीमान् श्रीधरः श्रीसुखाश्रयः ।
 श्रीदाता श्रीकरः श्रीशः श्रीसेव्यः श्रीविभावनः ॥ ११ ॥
 परमात्मा परं ब्रह्म परेशः परमेश्वरः ।
 परानन्दः परं धाम परमानन्ददायकः ॥ १२ ॥
 निरालम्बो निर्विकारो निर्लेपो निरवग्रहः ।
 नित्यानन्दो नित्यमुक्तो निरीहो निस्पृहप्रियः ॥ १३ ॥
 प्रियम्बदः प्रियकरः प्रियदः प्रियसज्जनः ।
 प्रियानुगः प्रियालम्बो प्रियकीर्तिः प्रियात्प्रियः ॥ १४ ॥
 महात्यागी महाभोगी महायोगी महातपाः ।
 महात्मा महतां श्रेष्ठो महालोकपतिर्महान् ॥ १५ ॥
 सिद्धार्थः सिद्धसङ्कल्पः सिद्धिदः सिद्धसाधनः ।
 सिद्धेशः सिद्धमार्गप्रियः सिद्धलोकैकपालकः ॥ १६ ॥
 इष्टो विशिष्टः शिष्टेष्टो महिष्टो जिष्णुस्तमः ।
 ज्येष्ठः श्रेष्ठश्च सर्वेष्टो विष्णुर्भ्राजिष्णुरव्ययः ॥ १७ ॥
 विभूः शम्भूः प्रभुर्भूमा स्वभूः स्वानन्दमूर्तिमान् ।
 प्रीतिमान् प्रीतिदाता च प्रीतिदः प्रीतिवर्द्धनः ॥ १८ ॥
 योगेश्वरो योगगम्यो योगीशो योगपारगः ।
 योगदाता योगपतिर्योगसिद्धिविधायकः ॥ १९ ॥
 सत्यव्रतः सत्यपरः त्रिसत्यः सत्यकारणः ।
 सत्याश्रयः सत्यहरः सत्पालिः सत्यवर्द्धनः ॥ २० ॥
 सर्वानन्दः सर्वहरः सर्वगः सर्ववश्यकृत् ।
 सर्वपाता सर्वसुखः सर्वश्रुतिगणार्णवः ॥ २१ ॥
 जनार्दनो जगन्नाथो जगत्त्राता जगत्पिता ।
 जगत्कर्ता जगद्धर्ता जगदानन्दमूर्तिमान् ॥ २२ ॥
 धरापतिर्लोकपतिः सत्पतिः कमलापतिः ।
 विद्यापतिर्वित्तपतिः सत्पतिः कमलापतिः ॥ २३ ॥

चतुरात्मा चतुर्बाहुश्चतुर्वंगफलप्रदः ।
 चतुर्व्यूहश्चतुर्द्धामा चतुर्युगविधायकः ॥ २४ ॥
 आदिदेवो देवदेवो देशो देवधारणः ।
 देवकृद्देवभृद्देवो देवेडितपदाम्बुजः ॥ २५ ॥
 विश्वेश्वरो विश्वरूपी विश्वात्मा विश्वतोमुखः ।
 विश्वसूर्विश्वफलदो विश्वगो विश्वनायकः ॥ २६ ॥
 भूतकृद्भूतभृद्भूद्भावो भूतात्मा भूतभावनः ।
 भूतिदो भूतिविस्तारो विभूतिभूतिपालकः ॥ २७ ॥
 नारायणो नारशायी नारसूर्नारजीवनः ।
 नारैकफलदो नारमुक्तिदो नारनायकः ॥ २८ ॥
 सहस्ररूपः साहस्रनामा साहस्रविग्रहः ।
 सहस्रशीर्षा साहस्रपादाक्षिभुजशीर्षवान् ॥ २९ ॥
 पद्मनाभः पद्मगर्भं पद्मो पद्मनिभेक्षणः ।
 पद्मशायी पद्ममाली पद्माङ्कितपदद्वयः ॥ ३० ॥
 दीर्घवान् स्थैर्यवान्वाग्मी शौर्यवान्धैर्यवान् क्षमी ।
 धीमान् धर्मपरो भोगी भगवान् भयनाशनः ॥ ३१ ॥
 जयन्तो विजयो जेता जयदो जयवर्द्धनः ।
 अमानो मानदो मान्यो महिमावान्महाबलः ॥ ३२ ॥
 सन्तुष्टस्तोषदो दाता दमनो दीनवत्सलः ।
 ज्ञानी यशस्वान् धृतिमान् सहजो बलाश्रयः ॥ ३३ ॥
 हयग्रीवो मरातेजा महार्णवविनोदकृत् ।
 मधुकैटभविध्वंसी वेदकृद्देवपालकः ॥ ३४ ॥
 सनत्कुमारः सनकः सनन्दश्च सनातनः ।
 अखण्डब्रह्मव्रतवानात्मा योगविवेचकः ॥ ३५ ॥
 श्रीनारदो देवऋषिः कर्माकर्मप्रवर्तकः ।
 सात्वतागमकृल्लोकहिताहितप्रसूचकः ॥ ३६ ॥
 आदिकालो यज्ञतत्त्वं धातृनासापुटोद्भवः ।
 दन्ताग्रन्यस्तभूगोलो हिरण्याक्षबलान्तकः ॥ ३७ ॥

पृथ्वीपतिः शीघ्रवेगो रोमान्तर्गतसागरः ।
 श्वासावधूतहेमाद्रिः प्रजापतिपतिस्तुतः ॥ ३८ ॥
 अनन्तो धरणीभर्ता तालतलवासकृत् ।
 कालाग्निजवनो नागराजराजो महाद्युतिः ॥ ३९ ॥
 महाकूर्मो विश्वकायः शेषभृक् सर्वपालकः ।
 लोकपितृगणाधीशः पितृस्तुतमहापदः ॥ ४० ॥
 कृपामयः स्वयं व्यक्तिर्ध्रुवप्रीतिविवर्द्धनः ।
 ध्रुवस्तुतपदो विष्णुलोकदो लोकपूजितः ॥ ४१ ॥
 शुक्लः कर्दमसन्तप्तस्तपस्तोषितमानसः ।
 मनोऽभीष्टप्रदो हर्षबिन्द्वंचितसरोवरः ॥ ४२ ॥
 यज्ञः सुरगणाधीशो दैत्यदानवघातकः ।
 मनुत्राता लोकपालो लोकपालकजन्मकृत् ॥ ४३ ॥
 कपिलाख्यः साङ्ख्यपाता कर्दमाङ्गसमुद्भवः ।
 सर्वसिद्धगणाधीशो देवहूतिगतिप्रदः ॥ ४४ ॥
 दत्तोऽत्रितनयो योगी योगमार्गप्रदर्शकः ।
 अनसूयानन्दकरः सर्वयोगिजनस्तुतः ॥ ४५ ॥
 नारायणो नरऋधर्मपुत्रो महामनाः ।
 महेशशूलदमनो महेशैकवरप्रदः ॥ ४६ ॥
 आकल्पान्ततपोधीरो मन्मथादिमदापहः ।
 ऊर्वशीसृग्जितानङ्गो मार्कण्डेयप्रियप्रदः ॥ ४७ ॥
 ऋभवो नाभिसुखदो मेरुदेवीप्रियात्मजः ।
 योगिराजद्विजस्रष्टा योगचर्याप्रदर्शकः ॥ ४८ ॥
 अष्टबाहुर्दक्षयज्ञपावनोऽखिलसत्कृतः ।
 दवेशद्वेषशमनो दक्षज्ञानप्रदायकः ॥ ४९ ॥
 प्रियव्रतकुलोत्पन्नो गयनामा महायशः ।
 उदारकर्मा बहुविन्महागुणगणार्णवः ॥ ५० ॥
 हंसरूपी तत्त्ववक्ता गुणागुणविवेचकः ।
 धातूलज्जा प्रशमनो ब्रह्मचारिजनप्रियः ॥ ५१ ॥

- वैश्यः पृथुः पृथिवदोग्धा सर्वजविनदोहकृत ।
 आदिराजो जनावासकारको भूसमीकरः ॥ ५२ ॥
- प्रचेतोऽभिष्टुतपदः शान्तमूर्तिः सुदर्शनः ।
 दिवारात्रिगणाधीशः केतुमानजनाश्रयः ॥ ५३ ॥
- श्रीकामदेवः कमलाकामकेलिविनोदकृत् ।
 स्वपादरतिदोऽभोष्टमुखदो दुःखनाशनः ॥ ५४ ॥
- विभुर्द्वमभूतां श्रेष्ठो वेदशीर्षो द्विजात्मजः ।
 अष्टाशीतिसहस्राणां मुनीनामुपदेशदः ॥ ५५ ॥
- सत्यसेनो यक्षरक्षोदहनो दोनपालकः ।
 इन्द्रमित्रः सुरारिघ्नः सूनृताधर्मनन्दनः ॥ ५६ ॥
- हरिर्गजवरत्राता ग्राहपाशविनाशकः ।
 त्रिकूटाद्रिवनश्लाघी सर्वलोकहितैषणः ॥ ५७ ॥
- वैकुण्ठशुभ्रामुखदो विकुण्ठासुन्दरीमुतः ।
 रमाप्रियकरः श्रीमान्निजलोकप्रदर्शकः ॥ ५८ ॥
- विप्रशापपरीखिन्ननिर्जरार्तिनिवारणः ।
 दुग्धाब्धिमथनो विप्रो विराजतनयोऽजितः ॥ ५९ ॥
- मन्दाराद्रिधरः कूर्मो देवदानवशर्मकृत् ।
 जम्बूद्वीपसमस्त्रष्टा पीयूषोत्पत्तिकारणम् ॥ ६० ॥
- धन्वन्तरो रुक्शमनोऽमृतधुक् रुक्प्रशान्तकः ।
 आयुर्वेदकरो वैद्यराजो विद्याप्रदायकः ॥ ६१ ॥
- देवाभयकरो दैत्यमोहिनी कामरूपिणी ।
 गोर्वाणामृतपो दुष्टदैत्यदानववञ्चकः ॥ ६२ ॥
- महामत्स्यो महाकायः शल्कान्तर्गतसागरः ।
 वेदारिदैत्यदमनो ब्रोहिबीजसुरक्षकः ॥ ६३ ॥
- पुच्छाघातभ्रमत्सिन्धुः सत्यव्रतप्रियंप्रदः ।
 भक्तसत्यव्रतस्त्राता योगत्रयप्रदर्शकः ॥ ६४ ॥
- नरसिंहो लोकजिह्वः शङ्कुकर्णो नखायुधः ।
 जटावधूतजलदो दन्तद्युतिजितप्रभः ॥ ६५ ॥

हिरण्यकशिपुध्वंसी	बहुदानवदर्पहा ।
प्रह्लादस्तुतपादाब्जो	भक्तसंसारतापहा ॥ ६६ ॥
ब्रह्मेन्द्रभृतिघ्नो	देवकार्यप्रसाधकः ।
ज्वलज्जलनसङ्काशः	सर्वभीतिविनाशकः ॥ ६७ ॥
महाकलुषविध्वंसी	सर्वकामवरप्रदः ।
कालविक्रमसंहर्ता	ग्रहपीडाविनाशकः ॥ ६८ ॥
सर्वव्याधिप्रशमनः	प्रचण्डरिपुदण्डकृत् ।
उग्रभैरवसन्त्रस्तहरातिविनिवारकः	॥ ६९ ॥
ब्रह्मचर्मवृतशिराः	शिवशीर्षेकनूपुरः ।
द्वादशादित्यशीर्षेकमणिर्दिक्पालभूषणः	॥ ७० ॥
वामनोऽदितिभीतिघ्नो	द्विजातिगणमण्डनः ।
त्रिपदव्याजयात्राप्रबलित्रैलोक्यसम्पदः	॥ ७१ ॥
पन्नखक्षतब्रह्माण्डकटाहोऽमितविक्रमः	।
स्वर्धुनीतीर्थजननो ब्रह्मपूज्यो	भयापहः ॥ ७२ ॥
स्वाङ्घ्रिवारिहताघौघो	विश्वरूपैकदर्शनः ।
बलिप्रियकरो	भक्तस्वर्गदोग्धागदाधरः ॥ ७३ ॥
जामदग्न्यो महावीर्यः	पशुभृत्कार्तवीर्यजित् ।
सहस्रार्जुनसंहर्ता	सर्वक्षत्रकुलान्तकः ॥ ७४ ॥
निःक्षत्रपृथ्वीकरणो	वीरजिद्विप्रराज्यदः ।
द्रोणास्त्रवेदप्रवदो	महेशगुरुकीर्तिदः ॥ ७५ ॥
सूर्यवंशाब्जतरणिः	श्रीमद्दशरथात्मजः ।
श्रीरामो रामचन्द्रश्च	रामभद्रोऽमितप्रभः ॥ ७६ ॥
नीलवर्णप्रतीकाशः	कौसल्याप्राणजीवनः ।
पद्मनेत्रः पद्मचक्रः	पद्माङ्कितपदाम्बुजः ॥ ७७ ॥
प्रलम्बबाहुश्चार्वाङ्गो	रत्नाभरणभूषितः ।
दिव्याम्बरो	दिव्यधनुर्दिष्टदिव्यास्त्रपारगः ॥ ७८ ॥
निस्त्रिंशपाणिर्वीरेशोऽपरिमेयपराक्रमः	।
विश्वामित्रगुरुधन्वी	धनुर्वेदविदुत्तमः ॥ ७९ ॥

ऋजुमार्गनिमित्तेषु सङ्घताडिताडकः ।
 सुबाहुर्बाहुवीर्याढ्यबहुराक्षसाघातकः ॥८०॥
 प्राप्तचण्डीशदोर्दण्डचण्डकोदण्डखण्डनः ।
 जनकानन्दजनको जानकीप्रियनायकः ॥८१॥
 अरातिकुलदर्पघ्नो ध्वस्तभार्गवविक्रमः ।
 पितृवाक्यत्तराज्यधीर्वनवासकृतोत्सवः ॥८२॥
 विराधराधदमनश्चित्रकूटाद्रिमन्दिरः ।
 द्विजशापसमुच्छन्नदण्डकारण्यकर्मकृत् ॥८३॥
 चतुर्दशसहस्रोग्रराक्षसघ्नः खरान्तकः ।
 त्रिशिरःप्राणशमनो दुष्टदूषणदूषणः ॥८४॥
 छद्ममारीचमथनो जानकीविरहार्तिहृत् ।
 जटायुषः क्रियाकारो कबन्धवधकोविदः ॥८५॥
 शृण्णमूकगुहावासी कपिपञ्चमसख्यकृत् ।
 वामपादाग्रनिक्षिप्तदुन्दुभ्यस्थिबृहद्गिरिः ॥८६॥
 सकटकारदुर्भेदसप्ततालप्रभेदकः ।
 किङ्किन्धाधिपवालिघ्नो मित्रसुग्रीवराज्यदः ॥८७॥
 आज्ञनेयस्वलाङ्गूलवदधलङ्कामहोदयः ।
 सीताविरहविस्पष्टरोषक्षोभितसागरः ॥८८॥
 गिरिकूटसमुत्क्षेपसमुद्राद्भुतसेतुकृत् ।
 पादप्रहारसन्त्रस्तबिभीषण भयापहः ॥८९॥
 अङ्गदोक्तिपरिक्लिष्टघोररावणसैन्यजित् ।
 निकुम्भकुम्भधूम्राक्षकुम्भकर्णादिवीरहा ॥९०॥
 कैलाससहनोन्मत्तदशाननशिरोहरः ।
 अग्निसंस्तुद्धसीतासम्बरणोत्सुकः ॥९१॥
 कपिराक्षसराजाङ्गप्राप्तराज्यनिजाश्रयः ।
 अयोध्याधिपतिः सर्वराजन्यगणशेखरः ॥९२॥
 अचिन्त्यकर्मा नृपतिः प्राप्तसिंहासनोदयः ।
 दुष्टदुर्बुद्धिदलनो दीनहीनैकपालकः ॥९३॥

सर्वसम्पत्तिजननस्तिर्यङ्न्यायविवेचकः ।
 शूद्रघोरतपःप्लुष्टद्विजपुत्रैकजीवनः ॥९४॥
 दुष्टवाक्किल्बिष्टहृदयः सीतानिर्वासकारकः ।
 तुरङ्गमेधक्रतुयाद् श्रीमत्कुशलवात्मजः ॥९५॥
 सत्यार्थत्यक्तसौमित्रिः सूत्रीतजनसंग्रहः ।
 सत्कर्णपूरसत्कीर्तिः कीर्त्यालोकाघनाशनः ॥९६॥
 भरतो ज्येष्ठपादाब्जरतित्यक्तनृपासनः ।
 सर्वसद्गुणसम्पन्नः कोटिगन्धर्वनाशकः ॥९७॥
 लक्ष्मणो ज्येष्ठनिरतो देववैरिगणान्तकः ।
 इन्द्रजित्प्राणशमनो भ्रातृमान् त्यक्तविग्रहः ॥९८॥
 शत्रुघ्नोऽमित्रशमनो लवणान्तककारकः ।
 आर्यभ्रातृजनश्लाघ्यः सतां श्लाघ्यगुणाकरः ॥९९॥
 वटपत्रपुटस्थायी श्रीमुकुन्दोऽखिलाश्रयः ।
 तनूदरापितजगन्मृकण्डतनयः खगः ॥१००॥
 आद्यो देवगणाग्रण्यो मितस्तुतिनतिप्रियः ।
 वृत्रघोरतनुत्रस्तदेवसन्मन्त्रसाधकः ॥१०१॥
 ब्रह्मण्यो ब्राह्मणश्लाघी ब्रह्मण्यजनवत्सलः ।
 गोषादाम्बुगलद्गात्रवालखिल्यजनाश्रयः ॥१०२॥
 दौस्वस्तिर्यज्वनां श्रेष्ठो नृपविस्मयकारकः ।
 तुरङ्गमेधबहुकृद्वदान्यगणशेखरः ॥१०३॥
 वासवीतनयो व्यासो वेदशाखानिरूपकः ।
 पुराणभारताचार्यः कलिलोकहितैषणः ॥१०४॥
 रोहिणीहृदयानन्दो बलभद्रो बलाश्रयः ।
 सङ्कर्षणः सीरपाणिः मुशलास्त्रोऽमलद्युतिः ॥१०५॥
 शङ्खकुन्देन्दुश्वेताङ्गस्तालभिद्वेनुकान्तकः ।
 मुष्टिकारिष्ठहननो लाङ्गलाकृष्टयामुनः ॥१०६॥
 प्रलम्बप्राणहा रुक्मीमथनो द्विविदान्तकः ।
 रेवतीप्रीतिदो रामारमणो बल्वलान्तकः ॥१०७॥

हस्तिनापुरसङ्क्षर्षी कौरवाचितसत्पदः ।
 ब्रह्मादिस्तुतपादाब्जो देवयादवपालकः ॥१०८॥
 मायापतिर्महामायो महामायानिदेशकृत् ।
 यदुवंशाब्धिपूर्णन्दुर्बलदेवप्रियानुजः ॥१०९॥
 नराकृतिः परं ब्रह्म परिपूर्णः परोदयः ।
 सर्वज्ञानादिसम्पूर्णः पूर्णानन्दः पुरातनः ॥११०॥
 पीताम्बरः पीतनिद्रः पीतवेश्ममहातपा ।
 महोरस्कोमहाबाहुर्महार्हमणिकुण्डलः ॥१११॥
 लसद्गण्डस्थलीहैममौलिमालाविभूषितः ।
 सुचारुकर्णः सुभ्राजन्मकराकृतिकुण्डलः ॥११२॥
 नीलकुञ्चितमुस्तिग्धकुन्तलः कौमुदीमुखः ।
 सुनासः कुन्ददशनो लसत्कोकनदाधरः ॥११३॥
 सुमन्दहासो रुचिरभ्रूमण्डलविलोकनः ।
 कम्बुकण्ठो बृहद्ब्रह्मा वलयःङ्गदभूषणः ॥११४॥
 कौस्तुभो वनमाली च शङ्खचक्रगदाब्जभृत् ।
 श्रीवत्सलक्ष्म्यालक्ष्याङ्गः सर्वलक्षणलक्षणः ॥११५॥
 दलोदरो निम्ननाभिनिरवद्यो निराश्रयः ।
 नितम्बबिम्बव्यालम्बिकिङ्किणीकाञ्चिमण्डितः ॥११६॥
 समजङ्घाजानुयुग्मः सुचारुचिराजितः ।
 ध्वजवज्राङ्कुशाम्भोजशराङ्कितपदाम्बुजः ॥११७॥
 भक्तभ्रमरसङ्घातपीतपादाम्बुजासवः ।
 नखचन्द्रमणिज्योत्स्नाप्रकाशितमहामनाः ॥११८॥
 पादाम्बुजयुगन्यस्तलसन्मञ्जीरराजितः ।
 स्वभक्तहृदयाकाशलसत्पङ्कजविस्तरः ॥११९॥
 सर्वप्राणिजनानन्दो वसुदेवनुतिप्रियः ।
 देवकीनन्दनो लोकनन्दिकृद्भक्तभीतिभित् ॥१२०॥
 शेषानुगः शेषशायी यशोदानतिमानदः ।
 नन्दानन्दकरो गोपगोपीगोकुलबान्धवः ॥१२१॥

सर्वव्रजजनानन्दी	भक्तवल्लभवल्लभः ।
वत्यव्यङ्गलसद्गात्रो	बल्लवीबाहुमध्यगः ॥१२२॥
पीतपूतनिकास्तन्यः	पूतनाप्राणशोषणः ।
पूतनोरस्थलस्थायी	पूतनामोक्षदायकः ॥१२३॥
समागतजनानन्दी	शकटोच्चाटकारकः ।
प्राप्तविप्राशिषोधीशो	लघिमादिगुणाश्रयः ॥१२४॥
तृणावर्तगलग्राही	तृणावर्तनिषूदनः ।
जनन्यानन्दजनको	जनन्यामुखविश्वदूक् ॥१२५॥
बालक्रीडारतो	बालभाषालीलादिनिर्वृतः ।
गोपगोपीप्रियकरो	गीतनृत्यानुकारकः ॥१२६॥
नवनीतविलिप्ताङ्गो	नवनीतलवप्रियः ।
नवनीतलवाहारो	नवनीतानुतस्करः ॥१२७॥
दामोदरोऽजुनोन्मूलो	गौपैकमतिकारकः ।
वृन्दावनवनक्रीडो	नानाक्रीडाविशारदः ॥१२८॥
वत्सपुच्छसमाकर्षी	वत्सासुरनिषूदनः ।
बकारिरघसंहारी	बालाद्यन्तकनाशनः ॥१२९॥
यमुनानिलसञ्जुष्टसुमृष्टपुलिनप्रियः	।
गोपालबालपूगस्थः	स्निग्धदध्यन्नभोजनः ॥१३०॥
गोगोपगोपीप्रियकृद्धनमृन्मोहखण्डनः	।
विधातुर्मोहजनकोऽत्यद्भुतैश्वर्यदर्शकः	॥१३१॥
विधिस्तुतपदाम्भोजो	गौपदारकबुद्धिभित् ।
कालीयदर्पदलनो	नागनारीनुतिप्रियः ॥१३२॥
दावाग्निशमनः	सर्वव्रजभृञ्जनजीवनः ।
मुञ्जारण्यप्रवेशः	प्रकृच्छ्रदावाग्निदारणः ॥१३३॥
सर्वकालमुखक्रीडो	बहिर्बहवित्तंसकः ।
गोधुग्धधूजनप्राणो	वेणुवाद्यविशारदः ॥१३४॥
गोपीपिधानारुन्धानो	गोपीव्रतवरप्रदः ।
विप्रदर्पप्रशमनो	विप्रपत्नीप्रसाददः ॥१३५॥

शतक्रतुवरध्वंशी शक्रदर्पमदापहः ।
 धृतगोवद्धंनगिरिब्रंजलोकाभयप्रदः ॥१३६॥
 इन्द्रकीतिलसत्कीर्तिर्गोविन्दो गोकुलोत्सवः ।
 नन्दत्राणकरो देवजलेशेडितसत्कथः ॥१३७॥
 व्रजवासिजनश्लाघ्यो निजलोकप्रदर्शकः ।
 सुवेणुनादमदनोन्मत्तगोपीविनोदकृत् ॥१३८॥
 गोधुग्वधूदर्पहरः स्वयशःकीर्तनोत्सवः ।
 व्रजाङ्गनाजनारामो व्रजसुन्दरिवल्लभः ॥१३९॥
 रासक्रीडारतो रासमहामण्डलमण्डनः ।
 वृन्दावनवनामोदी यमुनाकूलकेलिकृत् ॥१४०॥
 गोपिकागीतिकागीतः शङ्खचूडशिरोहरः ।
 महासर्पमुखग्रस्तत्रस्तनन्दविमोचकः ॥१४१॥
 सुदर्शनाचितपदो दुष्टारिष्टविनाशकः ।
 केशिद्वेषो व्योमहन्ता श्रुतनारनकीर्तनः ॥१४२॥
 अक्रूरप्रियकृत् क्रूररजकधनः सुवेशकृत् ।
 सुदामदत्तमालाढ्यः कुब्जाचन्दनचर्चितः ॥१४३॥
 मथुराजनसंहर्षी चण्डकोदण्डखण्डकृत् ।
 कंससैन्यसमुच्छेदी वणिग्विप्रगणार्चितः ॥१४४॥
 महाकुवलयपीडघाती चाणुरमर्दनः ।
 रागशालागतापारनरनारीकृतोत्सवः ॥१४५॥
 कंसध्वंसकरः कंसस्वसारूप्यगतिप्रदः ।
 कृतोग्रसेननृपतिः सर्वयादसौख्यकृत् ॥१४६॥
 तातमातृकृतान्दो नन्दगोपप्रसाददः ।
 श्रितसान्दीपनिगुरुविद्यासागरपारगः ॥१४७॥
 दैत्यपञ्चजनध्वंसी पाञ्चजन्यदरप्रियः ।
 सान्दीपनिमृतापत्यदाता कालयमाचितः ॥१४८॥
 सैरन्ध्रोकामसन्तापशमनोऽक्रूरप्रीतिदः ।
 शाङ्गचापधरो नानाशरसन्धानकोविदः ॥१४९॥

अभेद्यदिव्यकवचः	श्रीमद्धारुससारथिः ।
खगेन्द्रचिह्नितध्वजश्चक्रपाणिर्गदाधरः	॥१५०॥
नन्दकीयदुसेनाढ्योऽक्षयबाणनिषङ्गवान्	।
सुरासुराजेयरणो	जितमागधयूथपः ॥१५१॥
मागधध्वजिनीध्वंसः	मथुरापुरपालकः ।
द्वारकापुरनिर्माता	लोकस्थितिनियामकः ॥१५२॥
सर्वसम्पत्तिजननः	स्वजनानन्दकारकः ।
कल्पवृक्षाक्षितमहिः	सुधर्मानितभूतलः ॥१५३॥
यवनासुरसंहर्ता	मुत्तुकुन्देष्टसाधकः ।
रुक्मिणीद्विजसम्मन्त्ररथैकगतकुण्डिनः	॥१५४॥
रुक्मिणीहारको	रुक्मिमुण्डमुण्डनकारकः ।
रुक्मिणीप्रियकृतसाक्षाद्रुक्मिणीरमणीपतिः	॥१५५॥
रुक्मिणीवदनः	भोजमधुपानमधुव्रतः ।
स्यमन्तकनिमित्तात्मभक्तर्क्षाधिपजित्	शुचिः ॥१५६॥
जाम्बवार्चितपादाब्जः	साक्षाज्जाम्बवतीपतिः ।
सत्यभामाकरग्राही	कालिन्दीसुन्दरीप्रियः ॥१५७॥
सुतेक्ष्णशृङ्गवृषभसमजिद्राजयूथभित्	।
नग्नजितनयासत्यानायिकानायकोत्तमः	॥१५८॥
भद्रेशो लक्ष्मणाकान्तो	मित्रविन्दाप्रियेश्वरः ।
मुरुजित्पीठसेनानीनाशनो	नरकान्तकः ॥१५९॥
धराचितपदाम्भोजो	भगदत्तभयापहा ।
नरकाहृतदिव्यस्त्रोरत्नवाहादिनायकः	॥१६०॥
अष्टोत्तरशतव्यष्टसहस्रस्त्रीविलासवान्	।
सत्यभामाबलावाक्यपारिजातापहारकः	॥१६१॥
देवेन्द्रबलभिज्जायाजातनानाविलासवान्	।
रुक्मिणीमानदलनः	स्त्रीविलासाविमोहितः ॥१६२॥
कामतातः	साम्बसुतोऽसङ्ख्यपुत्रप्रपौत्रवान् ।
उशाशागतपौत्रार्थबाणबाहुसन्नछित्	॥१६३॥

- नन्द्यादिप्रमथध्वंसी लीलाजितमहेश्वरः ।
 महादेवस्तुतपदो नृगदुःखविमोचकः ॥१६४॥
- ब्रह्मस्वापहरक्लेशकथास्वजनपालकः ।
 पौण्ड्रकारिः काशिराजशिरोहर्ता सदाजितः ॥१६५॥
- सुदक्षिणावताराध्यशिवकृत्यानलान्तकः ।
 वाराणसीप्रवहनो नारदेक्षितवैभवः ॥१६६॥
- अद्भुतैश्वर्यमहिमा सर्वधर्मप्रवर्तकः ।
 जरासन्धनिरोधार्तभूभुजेरितसत्कथः ॥१६७॥
- नारदेरितसन्मित्रकार्यगौरवसाधकः ।
 कलत्रपुत्रसन्मित्रसद्वृत्ताप्तगृहानुगः ॥१६८॥
- जरासन्धवधोद्योगकर्ता भूपतिशर्मकृत् ।
 सन्मित्रकृत्याचरितो राजसूयप्रवर्तकः ॥१६९॥
- सर्वषिगणसंस्तुत्यश्चैद्यप्राणनिकृन्तकः ।
 इन्द्रप्रस्थजनैः पूज्यो दुर्योधनविमोहनः ॥१७०॥
- महेशदत्तसौभाग्यपुरभित् शत्रुघातकः ।
 दन्तवक्ररिपुच्छेत्ता दन्तवक्रगतिप्रदः ॥१७१॥
- विदूरथप्रमथनो भूरिभारावतारकः ।
 पार्थदूतः पार्थहितः पार्थार्थः पार्थसारथिः ॥१७२॥
- पार्थमोहसमुच्छेदो गीताशास्त्रप्रदर्शकः ।
 पार्थबाणगतप्राणवीरकैवल्यरूपदः ॥१७३॥
- दुर्योधनादिदुर्वृत्तदहनो भीष्ममुक्तिदः ।
 पार्थाश्वमेधाहरकः पार्थराज्यप्रसाधकः ॥१७४॥
- पृथाभीष्टप्रदो भीमजयदो विजयप्रदः ।
 युधिष्ठिरेष्टसन्दाता द्रोपदीप्रीतिसाधकः ॥१७५॥
- सहदेवेरितपदो नकुलाचितविग्रहः ।
 ब्रह्मास्त्रदग्धगर्भस्थपुरुवंशप्रसादकः ॥१७६॥
- पौरवेन्द्रपुरस्त्रीभ्यो द्वारकागमनोत्सवः ।
 आनतदेशनिवसत्प्रजेरितमहत्कथः ॥१७७॥

प्रियप्रीतिकरो	मित्रविप्रदारिरद्रचभञ्जनः ।	
तीर्थापदेशसन्मित्रप्रियकृन्नन्दनन्दनः		॥१७८॥
गोपीजनज्ञानदाता	तातक्रतुकृतोत्सवः ।	
सद्वृत्तवक्ता	सद्वृत्तकर्ता	सद्वृत्तपालकः ॥१७९॥
तातात्मज्ञानसन्दाता	देवकीमृतपुत्रदः ।	
श्रुतदेवप्रियकरो	मैथिलानन्दवर्द्धनः	॥१८०॥
पार्थदर्पप्रशमनो	मृतविप्रसुतप्रदः ।	
स्त्रीरत्नवृन्दसन्तोषी	जनकेलिकलोत्सवः	॥१८१॥
चन्द्रकोटिजनानन्दी	भानुकोटिसमप्रभः ।	
कृतान्तकोटिदुर्लङ्घ्यः	कामकोटिमनोहरः	॥१८२॥
यक्षराट्कोटिधनवान्	मरुत्कोटिस्ववोर्यवान् ।	
समुद्रकोटिगम्भीरो	हिमवत्कोटचकम्पनः	॥१८३॥
कोटचक्रमेघाढ्यहरः	तीर्थकोटचधिकाह्वयः ।	
पीयूषकोटिमृत्युघ्नः	कामधुक्कोटचभीष्टदः	॥१८४॥
शक्रकोटिविलासाढ्यः	कोटिब्रह्माण्डनायकः ।	
सर्वाभोगोद्यमोऽनन्तकीर्तिनिःसीमपौरुषः		॥१८५॥
सर्वाभीष्टप्रदयशः	पुण्यश्रवणकीर्तनः ।	
ब्रह्मादिमुरसङ्गीतवीतमानुषचेष्टितः		॥१८६॥
अनादिमध्यनिधनो	वृद्धिक्षयविवर्जितः ।	
स्वभक्तोद्धवमुख्यैकज्ञानदो	ज्ञानविग्रहः	॥१८७॥
विप्रशापच्छलध्वस्तयदुवंशोप्रविक्रमः		।
सशरीरजरान्याधस्वगन्दः	स्वर्गिसंस्तुतः	॥१८८॥
सुमुक्षुमुक्तविषयिजनायन्दकरो	यशः ।	
कलिकालमलध्वंसियशः	श्रवणमङ्गलः	॥१८९॥
भक्तप्रियो	भक्तहितो	भक्तभ्रमरपङ्कजः ।
स्मृतमात्राखिलत्राता	यन्त्रमन्त्रप्रभञ्जकः	॥१९०॥
सर्वसम्पत्स्त्राविनामा	तुलसीदामवल्लभः ।	
अप्रमेयवपुर्भास्वदनध्याङ्गविभूषणः		॥१९१॥

- विश्वैकसुखदो विश्वसज्जनानन्दपालकः ।
 सर्वदेवशिरोरत्नमद्भुतान्तभोगवान् ॥१९२॥
 अधोक्षजो जनाजीव्यः सर्वसाधुजनाश्रयः ।
 समस्तभयभिन्नामा स्मृतमात्रातिनाशकः ॥१९४॥
 स्वयंशःश्रवणानन्दजनरागो गुणार्णवः ।
 अनिर्देश्यवपुस्तप्तशरणा जीवजीवनः ॥१९५॥
 परमार्थः परंवेद्यः परज्योतिः परागतिः ।
 वेदान्तवेद्यो भगवाननन्तमुखसागरः ॥१९५॥
 जगद्बन्धध्वंसयशा जगज्जीवनाश्रयः ।
 वैकुण्ठलोकैकपतिवैकुण्ठजनवल्लभः ॥१९६॥
 प्रद्युम्नो रुक्मिणीपुत्रः शम्बरधनो रतिप्रियः ।
 पुष्पधन्वा विश्वजयी द्युमत्प्राणनिषूदकः ॥१९७॥
 अनिरुद्धः कामसुतः शब्दयोनिर्महाक्रमः ।
 उषापतिर्वृष्णिपतिर्हृषीकेशो मनःपतिः ॥१९८॥
 श्रीमद्भूगवताचार्यः सर्ववेदान्तसागरः ।
 शुकः सकलधर्मज्ञः परोक्षिन्तृपसत्कृपः ॥१९९॥
 श्रीबुद्धो दुष्टबुद्धिघ्नो दैत्यवेदबहिष्करः ।
 पाण्डुमार्गप्रवदो निरायुधजगज्जयः ॥२००॥
 कल्की कलियुगाच्छादी पुनः सत्यप्रवर्तकः ।
 विप्रविष्णुयशोऽपत्यो नष्टधर्मप्रवर्तकः ॥२०१॥
 सारस्वतः सार्वभौमो बलित्रैलोक्यसाधकः ।
 अष्टम्यन्तरसद्धर्मवक्ता वैरोचनिप्रियः ॥२०२॥
 आपः करो रमानाथोऽमरारिकूलकृन्तनः ।
 श्रुतेन्द्रहितकृद्धीरवरिमुक्तिबलप्रदः ॥२०३॥
 विष्वक्सेनः शम्भुसखो दशमान्तरपालकः ।
 ब्रह्मासार्वर्णिवंशाब्धिहितकृद्विश्ववर्द्धनः ॥२०४॥
 धर्मसेतुरधर्मघ्नो वैध्यतन्त्रपदप्रदः ।
 असुरान्तकरो देवार्थकसूनुः सुभाषणः ॥२०५॥

स्वधामा सूनृतासूनुः सत्यतेजो द्विजात्मजः ।
 द्विषन्मनुयुगत्राता पातालपुरदारणः ॥२०६॥
 दैवहोत्रिर्वाहर्हंतोयो दिवस्वतिरतिप्रियः ।
 त्रयोदशान्तरत्राता योगयोगिजनेश्वरः ॥२०७॥
 सत्रायणो बृहद्बाहुर्वनतेयो विदुत्तमः ।
 कर्मकाण्डैकप्रवदो वेदतन्त्रप्रवर्तकः ॥२०८॥
 परमेष्ठो सुरज्येष्ठो ब्रह्मा विश्वसृजापतिः ।
 अञ्जयोनिर्हंसवाहः सर्वलोकपितामहः ॥२०९॥
 विष्णुः सर्वजगत्पाता शान्तः युद्धः सनातनः ।
 द्विजपूज्यो दयासिन्धुः शरण्यो भक्तवत्सलः ॥२१०॥
 रुद्रो मूढः शिवः शास्ता शम्भुः सर्वहरो हरः ।
 कपर्दी शङ्करः शूली त्र्यक्षोऽभेद्यो महेश्वरः ॥२११॥
 सर्वाध्यक्षः सर्वशक्तिः सर्वार्थः सर्वतोमुखः ।
 सर्वावासः सर्वरूपः सर्वकारणकारणम् ॥२१२॥
 इत्येतत्कथितं विप्र विष्णोर्नामसहस्रकम् ।
 सर्वपापप्रशमनं सर्वाभोष्टफलप्रदम् ॥२१३॥
 मनःशुद्धिकरं चाशु भगवद्भक्तिवर्द्धनम् ।
 सर्वविघ्नहरं सर्वाश्रयैर्द्वयप्रदायकम् ॥२१४॥
 सर्वदुःखप्रशमनं चातुर्वर्ग्यफलप्रदम् ।
 श्रद्धया परया भक्त्या श्रवणात्पठनाज्जपात् ॥२१५॥
 प्रत्यहं सर्ववर्णानां विष्णुपादाश्रितात्मनाम् ।
 एतत्पठन्विजो विद्यां क्षत्रियः पृथिवीमिमाम् ॥२१६॥
 वैद्यो महानिधिः शूद्रो वाञ्छितां सिद्धिमाप्नुयात् ।
 द्वात्रिंशदपराधान्यो ज्ञानाज्ञानाच्चरेद्धरे ॥२१७॥
 नाम्ना दशापराधांश्च प्रमादादाचरेद्यदि ।
 समाहितमना ह्येतत्पठेद्वा श्रावयेज्जपेत् ॥२१८॥
 स्मरेद्वा शृणुयाद्वापि तेभ्यः सद्यः प्रमुच्यते ।
 नातः परतरं पुण्यं त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥२१९॥

यस्यैककीर्तनेनापि भवबन्धाद्विमुच्यते ।
 अतस्त्वं सततं भक्त्या श्रद्धया कीर्तनं कुरु ॥२२०॥
 विष्णोर्नामसहस्रं ते भगवत्प्रीतिकारणम् ।

श्रीनारद उवाच

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि त्वयातिकरुणात्मना ।
 यतः कृष्णस्य परमं सहस्रं नामकीर्तितम् ॥२२१॥
 यद्यालस्यात्प्रमादाद्वा सर्वं पठितुमन्वहम् ।
 न शक्नोमि तदा देव किं करोमि वद प्रभो ॥२२२॥

श्रीशिव उवाच

यदि सर्वं न शक्नोषि प्रत्यहं पठितुं द्विज ।
 तदा कृष्णेति कृष्णेति कृष्णेति प्रत्यहं वद ॥२२३॥
 एतेन तव विप्रर्षे सर्वं सम्पद्यते सकृत् ।
 किं पुनर्भगवन्नाम्नां सहस्रस्य प्रकीर्तनात् ॥२२४॥
 यन्नामकीर्तनेनैव पुमान्संसारसागरम् ।
 तरत्यद्वा प्रपद्ये तं कृष्णं गोपालरूपिणम् ॥२२५॥
 इति सात्वततन्त्रे श्रीकृष्णसहस्रनामषष्ठः पटलः ॥

अथ

सप्तमः पटलः

श्री शिव उवाच

शृण्वन्ति प्रत्यहं ये वै विष्णोर्नामसहस्रकम् ।
कीर्तयन्त्यथवा विप्र संस्मरन्त्यादरेण वा ॥ १ ॥
शतं वा वृंशति वापि दश वा पञ्च वा द्विज ।
एकं वा कामतो भक्त्या विष्णुपादाम्बुजाश्रयाः ॥ २ ॥
तेषां फलस्य पुण्यानां नान्तं पश्यामि नारद ।
यतस्तैर्भगवानेव परानन्दो वशीकृतः ॥ ३ ॥
यतो नामैव परमं तीर्थं क्षेत्रं च पुण्यदम् ।
नामैव परमं दैवं नामैव परमं तपः ॥ ४ ॥
नामैव परमं दानं नामैव परमा क्रिया ।
नामेव परमो धर्मो नामेवार्थः प्रकीर्तितः ॥ ५ ॥
नानैव कामो भक्तानां मोक्षोऽपि नाम केवलम् ।
एषां च साधनं नाम कामिनां द्विजसत्तम ॥ ६ ॥
नामैव परमा भक्तिर्नामैव परमा गतिः ।
नामैव परमं जाप्यं नामैव प्रार्थनं परम् ॥ ७ ॥
निष्कामानां धनं नाम मुक्तिभुक्तिगुखार्थवत् ।
नाम स्यात्परमं सौख्यं नामैव वैराग्यकारणम् ॥ ८ ॥
सत्त्वशुद्धिकरं नाम नाम ज्ञानप्रदं स्मृतम् ।
मुमुक्षूणां मुक्तिपदं कामिनां सर्वकामदम् ॥ ९ ॥
वैष्णवानां फलं नाम तस्मान्नाम सदा स्मरेम् ।
सङ्केतितात्पारिहास्याद्वेलनाज्वरतापतः ॥ १० ॥
कीर्तितं भगवन्नाम सर्वपापहरं स्मृतम् ।
यावती पापनिहारी शक्तिर्नाम्नि हरेः स्थिता ॥ ११ ॥

सप्तमः पटलः

तावत्पापिजनः पापं कर्तुं शक्नोति नैव हि ।
ज्ञानाज्ञानाद्वरेर्नामकीर्तनात्पुरुषस्य हि ॥१२॥
पापराशिं दहत्याशु यथा तूलं विभावसुः ।
सङ्कीर्तितं हरेर्नाम श्रद्धया पुरुषेण वै ॥१३॥
तस्य सत्यफलं धत्ते क्रमशो द्विजसत्तमः ।
पापनाशं महापुण्यं वैराग्यं च चतुर्विधम् ॥१४॥
गुरुस्वामात्मबोधं भ्रान्तिनाशमनन्तरम् ।
सम्पूर्णानन्दबोधं च ततस्तस्मिन् लभेतिस्थिरम् ॥१५॥

श्रीनारद उवाच

चतुर्विधं त्वया प्रोक्तं वैराग्ये मुरसत्तम ।
एतद्वर्णय लोकस्य हिताय ज्ञानकारणम् ॥१६॥

श्रीशिव उवाच

असङ्गराहितो भोगः क्रियते पुरुषेण यत् ।
विषयाणां द्विजश्रेष्ठ तदमानः प्रकीर्तितः ॥१७॥
भोग्ये स्वादुविहीनेऽपि क्रियते वृत्तिरात्मनः ।
द्वितीयो व्यतिरेकाख्यस्तद्विजानीहि सत्तम ॥१८॥
मनसः प्रीतिराहित्ये इन्द्रियैरेव भुज्यते ।
भोगस्तृतीयः पुरुषैरिन्द्रियाख्यः प्रकीर्तितः ॥१९॥
मनसश्चेन्द्रियाणां च रागराहित्यमुत्तमम् ।
विषयाहरणं विप्र चतुर्थः परिकीर्तितः ॥२०॥
एष नाम परश्चाशु जायते द्विजसत्तम ।
ज्ञानं च परमं शुद्धं ब्रह्मानन्दप्रदायकम् ॥२१॥
तीर्थैर्दानैस्तपोभिश्च होमैर्जात्यैर्व्रतैर्मखैः ।
योगैश्च विविधैर्विप्र यद्विष्णुः परमं पदम् ॥२२॥
न यान्ति मानवास्तद्वै नामकीर्तनमात्रतः ।
संयान्त्येव न सन्देहं कुरु विप्र हरिप्रियम् ॥२३॥

महापातकयुक्तोऽपि कीर्तयित्वा जगद्गुरुम् ।
 तरत्येव न सन्देहः सत्यमेव वदाम्यहम् ॥२४॥
 कलिकालमलं चापि सर्वपातकमेव च ।
 हित्वा नामपरो विप्र विष्णुलोकं स गच्छति ॥२५॥
 तस्मान्नामैकमात्रेण तरत्येव भवार्णवम् ।
 पुमानत्र न सन्देहो विना नामापराधतः ॥२६॥
 तद्यत्नेनैव पुरुषः श्रेयस्कामो द्विजोत्तमः ।
 विष्णोर्न कुर्यान्नाम्नस्तु दशपापान्कथञ्चन ॥२७॥

श्रीनारद उवाच

श्रुतो भवगवतो वक्त्रादद्वाविंशदपराधकम् ।
 विष्णोर्नाम्ना दश तथा एतद्वर्णय नो प्रभो ॥२८॥

श्रीशिव उवाच

श्रूयतामपराधान् वै विष्णोर्वक्ष्यामि नारद ।
 यान् कृत्वा नरकं यान्ति मानवाः सततं मुने ॥२९॥
 अस्नात्वा स्पर्शनं विष्णोर्विना शङ्खेन स्नापनम् ।
 अशौचे स्पर्शनं साक्षाद्भुक्ता पादोदकग्रहः ॥३०॥
 विना शब्देन पूजा च विना नैवेद्यपूजनम् ।
 उच्चासनस्थपूजा च शीते व्यजनवातजम् ॥३१॥
 उदक्यादर्शनं चैव घण्टाया भुनिवेशनम् ।
 पौषे च चन्दनस्पर्शो ग्रीष्मे चास्पर्शनं तथा ॥३२॥
 पुष्पं तीयेन संस्पर्शं विना होमं महोत्सवः ।
 पूजां कृत्वा पृष्ठदर्शमग्रे च भ्रमणं तथा ॥३३॥
 भोजनं भगवद्वारे अभुक्त्वा च विषादता ।
 पादुकारोहणं विष्णोर्गोहे कम्बलवेशनम् ॥३४॥
 वामपादप्रवेशश्च कूर्दनं पाकभोजनम् ।
 श्लेष्मप्रक्षेपणं चैव तत्तृणैर्दन्तधावनम् ॥३५॥

देवाग्रे वाहनारोहो नैवेद्य द्रव्यबुद्धिता ।
 शालग्रामे स्थिरायां च शिलेति प्रतिमेति च ॥३६॥
 हरिकीर्तेरसंश्लाघा वैष्णवे नरसाम्यता ।
 विष्णौ च देवतासाम्यमन्योद्देशनिवेदनम् ॥३७॥
 एतेऽपराधा द्वात्रिंशद्विष्णोर्नाम्नामथ शृणु ।
 सतानाम्नाशिवे विष्णौ भिदाऽऽचार्याविमानता ॥३८॥
 वेदनिन्दा नाम्न वादः पापेच्छा नामसाहसात् ।
 नाम्नो धर्मः साम्यबुद्धिर्दानं श्रद्धाविवर्जितैः ॥३९॥
 श्रुत्वापि श्रद्धाराहित्यं कीर्तने चाप्यहन्मतिः ।
 एते नाम्नां द्विजश्रेष्ठ ह्यपराधा मघेरिताः ॥४०॥
 वर्जनीया नृभिर्यत्नैर्यतो नरककारणाः ।

श्रीनारद उवाच

विषयासक्तचित्तानां प्राकृतानां नृणां प्रभा ।
 अपराधा हरेराशु वर्ज्या नैव भवन्ति हि ॥४१॥
 अतो येन प्रकारेण तरन्ति प्राकृता अपि ।
 अपराधान् कृतान्देव तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥४२॥

श्रीशिव उवाच

प्रदक्षिणशतं कृत्वा दण्डवत्प्रणमेद्भुवि ।
 अपराधशतं तस्य क्षमते स्वस्य केशवः ॥४३॥
 प्रदक्षिणं सकृत्कृत्वा यो न जानुशिरं नमेत् ।
 निष्फलं तद्भुवेत्तस्य तस्मात्प्रत्येकशो नमेत् ॥४४॥
 जगन्नाथेति ते नाम व्याहरिष्यन्ति ते यदि ।
 अपराधशतं तेषां क्षमते नात्र संशयः ॥४५॥
 नाम्नोऽपराधास्तरति नाम्न एव सदा जपात् ।
 विना भक्तापराधेन तत्प्रसादविवर्जितः ॥४६॥

सर्वापराधांस्तरति विष्णुपादाम्बुजाश्रयः ।
विष्णोरप्यपराधान्वै नामसङ्कीर्तनात्तरेत् ॥४७॥

विष्णुभक्तापराधानां नैवास्त्यन्या प्रतिक्रिया ।

श्रीनारद उवाच

भक्तापरधान् मे ब्रूहि यथा तेषां प्रतिक्रिया ।
अनुग्रहाय लोकानां भगवन्मम चापि हि ॥४८॥

श्रीशिव उवाच

विष्णुभक्तस्य सर्वस्वहरणं द्विजसत्तम ।
भर्त्सनं चोत्तमे भक्ते स्वप्ने चापि प्रहारणम् ॥४९॥
एतेऽपराधा भक्तानां शृण्वेषां प्रतिक्रिया ।
तद्धनं द्विगुणं दत्त्वा कृत्वा पादाभिवन्दनम् ॥५०॥
कथयेन्मे क्षमस्वेति तद्दोषं धनकर्षणम् ।
यावत्तद्भर्त्सनं कृत्वा तावन्मासान्समाहितः ॥५१॥
निर्मत्सरः परिचरेत्तत्प्रसादेन शुद्धयति ।
यावज्जीवं प्रहारे तु पारिचर्य्येदतन्द्रितः ॥५२॥
तत्प्रसादेन तत्पापान्निकृतिर्नान्यथा भवेत् ।
अकृत्वा निष्कृतीनेताम्रारकान्नास्ति निष्कृतिः ॥५३॥
अज्ञानतः कृते विप्र तत्प्रसादेन नश्यति ।
ज्ञानात्तु द्विगुणं कुर्यादेष धर्मः सनातनः ॥५४॥
पुत्रे शिष्ये च जायायां शासने नास्ति दूषणम् ।
अन्यथा तु कृते दोषो भवत्येव न संशयः ॥५५॥
केशाकर्षे पदाघाते मुखे च चर्पटे कृते ।
न निष्कृतिं प्रपश्यामि तस्मात्तान्न समाचरेत् ॥५६॥
इति श्रीसात्वततन्त्रे सप्तमः पटलः ।

अथ

अष्टमः पटलः

श्रीविश उवाच

अथ ते संप्रवक्ष्यामि रहस्यं होतदुत्तमम् ।
यच्छ्रद्धया तु तिष्ठन् वै हरौ भक्तिर्दृढा भवेत् ॥१॥
देवे तीर्थे च धर्मे च विश्वासं तापतारणात् ।
तद्धित्वा कृष्णपादाम्बुशरणं प्रविशेन्मुदा ॥२॥
शरणं मे जगन्नाथः श्रीकृष्णः पुरुषोत्तमः ।
तन्नाम्नि स्वगुरौ चैव ब्रूयादेतत्समाहितः ॥३॥
हित्वान्यदेवतापूजां बलिदानादिना द्विज ।
एकमेव यजेत्कृष्णं सर्वदेवमयं धिया ॥४॥
नित्यं नैमित्तिकं कार्यं तथावश्यकमेव च ।
गृहाश्रमो विष्णुभक्तः कुर्यात्कृष्णं धिया स्मरन् ॥५॥
एतेषु चान्यदेवानां या पूजा विधिना स्मृता ।
सापि कृष्णार्चनात्पश्चात् क्रियेत यदि तं स्मरन् ॥६॥
अन्यदा त्वन्यदेवानां पृथक्पूजां न च स्मरेत् ।
काम्यं निषिद्धं च तथा नैव कुर्यात्कदाचन ॥७॥
कलत्रपुत्रमित्रादीन् हित्वा कृष्णं समाश्रिताः ।
हरिकीर्तिरता ये च तेषां कृत्यं न विद्यते ॥८॥
कृत्वाऽन्यदेवापूजां सकामां बलिना द्विज ।
भक्तिभ्रष्टो भवेदाशु संसारान्न निवर्तते ॥९॥
कामात्मा निरनुक्रोशः पशुघातं समाचरन् ।
पशुलोमसमं वर्षं नरके परिपच्यते ॥१०॥
यज्ञे पशोरालभने नैव दोषोऽस्ति यद्वचः ।
अपि प्रवृत्ती रागिणां निवृत्तिस्तु गरीयसी ॥११॥

कृत्वान्यदेवतापूजां पशुं हित्वा नराधमाः ।
 यदि ते स्वर्गंति यान्ति नरकं यान्ति के तदा ॥१२॥
 स मां पुनर्भक्षयिता यस्य मांसमदान्यहम् ।
 इति मांसनिरुक्तं वै वर्णयन्ति मनीषिणः ॥१३॥
 स मां पुनर्भक्षयिता यस्य मांसमदान्यहम् ।
 इति मांसनिरुक्तं वै वर्णयन्ति मनीषिणः ॥१३॥
 विष्णुर्भक्तिं समाश्रित्य पशुघातं समाचरन् ।
 कृत्वान्यदेवतापूजां भ्रष्टो भवति निश्चितम् ॥१४॥
 मानुष्यं प्राप्य ये जीवा न भजन्ति हरेः पदम् ।
 ते शोच्या स्थावरादीनामप्येकशरणा यदि ॥१५॥
 अहं ब्रह्मा सुरेन्द्राश्च ये भजामो दिवानिशम् ।
 ततोऽधिकोऽस्ति को देवः श्रीकृष्णात्पुरुषोत्तमात् ॥१६॥
 यत्प्रसादं प्रतीक्षन्ते सर्वे लोकाः सपालकाः ।
 सापि लक्ष्मीर्यच्चरणं सेवते तदनादृता ॥१७॥
 ततोऽधिकोऽस्ति को देवो लक्ष्मीकान्ताज्जनाहृतात् ।
 यन्नाम्नि के न संयान्ति पुरुषाः परमं पदम् ॥१७॥
 धर्मार्थकाममोक्षाणां मूलं यच्चरणार्चनम् ।
 ततोऽधिकोऽस्ति को देवः कृपासिन्धोर्महात्मनः ॥१९॥
 भजनस्याल्पमात्रेण बहु मन्येत यः सदा ।
 ततोऽधिकोऽस्ति को देवः सुखाराध्याज्जगद्गुरोः ॥२०॥
 येन केनापि भावेन योऽपि कोऽपि भजन् जनः ।
 लभतेऽभीप्सितां सिद्धिं मोक्षं चाप्यकुतोभयम् ॥२१॥
 ततोऽधिकोऽस्ति को देवः देवकोदेविभन्दनात् ।
 यो जगन्मुक्तये कीर्तिमतोर्यं ततान ह ॥२२॥
 अतोऽन्यदेवतापूजां त्यक्त्वा बलिविधानतः ।
 सद्गुरोरुपदेशेन भजेत्कृष्णपदद्वयम् ॥३३॥
 शृणुयात्प्रत्यहं विष्णोर्यशः परममङ्गलम् ।
 उच्चारयेन्मुखेनैव नाम चित्तेन संस्मरेत् ॥२४॥

प्रीतिं कुर्याद्वैष्णवेषु अभक्तंषु विवर्जयेत् ।
 दैवोपलब्धं भुञ्जानो नातियत्नं चरेत्सुखे ॥२५॥
 गृहेष्वतिथिवत्तिष्ठेद्यद्येतान्नैव बाधते ।
 एषां बाधे पृथक्तिष्ठेद्वैष्णवेषु च सङ्गवान् ॥२६॥
 ब्रह्मचारी गृही वापि वानप्रस्थो यतिश्च वा ।
 विना वैष्णवसङ्गेन नैवसिद्धिं लभेज्जनः ॥२७॥
 भक्तसङ्गं विना भक्तिर्नैव जायेत कस्यचित् ।
 भक्तिं विना न वैराग्यं न ज्ञानं मोक्षमश्नुते ॥२८॥
 अत आश्रमलिङ्गांश्च हित्वा भक्तेः समं वसेत् ।
 यत्सङ्गाच्छ्रुतिकीर्तिभ्यां हरौ भक्तिः प्रजायते ॥२९॥
 विष्णुभक्तप्रसङ्गस्य निमेषेणापि नारद ।
 स्वर्गापवर्गौ न साम्यं किमुतान्यसुखादिभिः ॥३०॥
 अतो यत्नेन पुरुषः कुर्यात्सङ्गं हरेर्जनैः ।
 तिर्यञ्चोऽपि यतो मुक्तिं लभन्ते किमु मानुषाः ॥३१॥
 तत्सङ्गेनैव पुरुषो विष्णुं प्राप्नोति निश्चितम् ।
 विना वैराग्यज्ञानाभ्यां यतो विष्णुस्तदन्तिके ॥३२॥
 येषां सङ्गाद्धरेः सङ्गं सकृदाकर्ण्य मानवः ।
 परित्यक्तुं न शक्नोति यदियाति भद्रसरिद्धवेत् ॥३३॥
 अरसजोऽपि तत्सङ्गं यदि याति कथञ्चन ।
 भूत्वा रसजोऽपि महान् कर्मबन्धाद्विमुच्यते ॥३४॥
 ततस्तद्धर्मनिरतो भगवत्यमलात्मनि ।
 प्राप्नोति परमां भक्तिं सर्वकामप्रदायिनीम् ॥३५॥
 भक्तिं विदित्वा पुरुषो मुक्तिं नेच्छति कश्चन ।
 सालोक्यादिपदं चापि किमु चान्यमुखं द्विज ॥३६॥
 फलं विना विष्णुभक्ता मुक्तिं यान्ति द्विजोत्तमम् ।
 तत एव विदुर्नान्य आनन्दमयमुत्तमम् ॥३७॥
 यतो हरोर्लिखितवत् हृदये वर्तते सदा ।
 तेषां प्रेमलताबद्धः परमानन्दविग्रहः ॥३८॥

इति श्रीसात्वततन्त्रेऽष्टमः पटलः ।

अथ

नवमः पटलः

श्रीनारद उवाच

इयान् गुणोऽस्ति देवेश भगवत्पादसेवने ।
कुतो भजन्ति मनुजो अन्यदेवं किमिच्छया ॥ १ ॥

श्रीशिव उवाच

यदाऽऽदिसत्ये विप्रेन्द्र नरा विष्णुपरायणाः ।
न यजन्ति विना विष्णुमन्यदेवं कथंचन ॥ २ ॥

तदात्मपूजाप्राप्त्यर्थं सर्वदेवमयं च वै ।
पूजयामो हृषीकेशं कायवाङ्मनसा द्विज ॥ ३ ॥

तदा तुष्टो विभुः प्राह देवदेवो रमेश्वरः ।
अवतीर्थं यजिष्यामि युष्माँल्लोकाँश्च याजयन् ॥ ४ ॥

ततः सर्वे जना युष्मान् यजिष्यन्ति समाहिताः ।
अनेन पूजा युष्माकं भविष्यति सुखावहा ॥ ५ ॥

अहं चोक्तः पृथक् तेन श्रीनिवासेन ब्राह्मण ।
कल्पितैरागमैर्नित्यं मां गोपाय महेश्वर ॥ ६ ॥

मदवज्ञापापहरं नाम्नां सहस्रमुत्तमम् ।
पठिष्यसि सदा भद्रं प्रार्थितेन मया पुनः ॥ ७ ॥

ततो मे ह्यागमैः कृष्णमाच्छाद्य न तु देवताः ।
यन्त्रैर्मन्त्रैश्च तन्त्रैश्च दर्शिताः फलदा द्विज ॥ ८ ॥

तैरागमैर्मन्दधिया हित्वा कृष्णं जगद्गुरुम् ।
भजन्ति देवता अन्या बलिदानेन नित्यशः ॥ ९ ॥

नाना देवान्समाराध्य नानाकामसुखेच्छया ।
भोगावसाने ते यान्ति नरकं स्वतमोमयम् ॥ १० ॥

दृष्ट्वा तथाविधैर्लोकान् पापाशङ्कितमानसः ।
गतोऽहं वासुदेवस्य चरणे शरणं द्विज ॥११॥
स्तुतिं च चक्रे प्रणतः प्रश्रयानतकन्धरः ।
समाहितमना विप्र प्राञ्जलिः पुरुषोत्तमम् ॥१२॥
ॐ नमोऽस्तु कृष्णाय विकृण्ठवेधसे
त्वत्पादलीलाश्रयजीवबन्धवे ।

सदाप्रकामाय महाथंहेतवे
विज्ञानविद्यानिधये स्वयम्भुवे ॥१३॥

एकोऽसि सृष्टेः पुरतो लये तथा
युगादिकाले च विदां समक्षतः ।

अन्यत्र नानातनुभिर्विराजते
तस्मा अनन्ताचरिताय ते नमः ॥१४॥

प्रधानकालाशयकर्मसाक्षिणे
तत्सङ्ग्रहापारविहारकारिणे ।

कृष्णाय नानातनुमोगुणे समे
कृतानुरागाय नमो नमस्ते ॥१५॥

शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति ये यशो
जगत्पवित्रं जगदीशितुस्तव ।

तेऽन्यं न पश्यन्ति सुखाय ह्यात्मनो
विना भवत्पादनिषेवणादबहिः ॥१६॥

निष्किञ्चना ये तव पादसंश्रयाः
गृणन्ति ते तत्सुखमात्मसम्भवं ।

जानन्ति तत्त्वेन विदुस्ततः पराः
कामैः समाकृष्टधियो विचक्षणाः ॥१७॥

अहं तु साक्षात्तव पादपङ्कजं
नित्यं भजानोऽपि पृथङ्मतिविभो ।

पुरात्ममानं प्रचिकीर्षुरात्मनः
सकाशतोऽप्यद्य मलं निकृन्तयन् ॥१८॥

अथापि ते देव पदाम्बुजद्वयं

निष्कामलाभाय सदास्तु मे हरेः ।

यच्चिन्तनात्सर्वमनोऽनुकूलात्

सिद्धिर्भवत्येव किमु प्रकीर्तनात् ॥१९॥

इति मे संस्तुतिं ज्ञात्वा भगवान्प्रणतार्तिहा ।

ममाक्षिगोचरं रूपमकरोत्स दयापरः ॥२०॥

सान्द्रानन्दमहेन्द्रनीलमणिवद्देहोद्गतप्रोल्लस -

त्स्वर्णमौलिषु हारकुण्डलयुगैः केयूरकाञ्च्यङ्गदैः ॥

मञ्जीरैर्विलसत्पिशङ्गवलयं लक्ष्म्याङ्कितं शाश्वतम्

सर्वेशं करुणाकरं सुरवरैर्भक्तैः सदासेवितम् ॥२१॥

दृष्ट्वा तत्पदपङ्कजं हृदि दधे गोविन्ददामोदर

श्रीकृष्णेति मुखैर्वदन् त्रिजगतो भर्तुर्मुदाऽहं तदा ।

नेत्रेर्निक्षरवारिपूरमिव मे गात्रे च हर्षस्ततो

वाण्यां गद्गदतां विलोक्य भगवान् मामाह भक्तप्रियः ॥२२॥

ज्ञतां मे सुरवर्यं वाञ्छिततरां मद्भक्तसङ्गावलिं

तत्तेऽहं प्रवदामि ते करुणया भक्ताय साकं वरैः ।

मल्लोलां गदतो भविष्यति भवत्सर्वे जना वैष्णवा ।

भार्या चापि तथानुकूलमुखदा भक्ताग्रणीर्मे भवान् ॥२३॥

एतावदुक्त्वा भगवान् गतो लोकमलौकिकम् ।

अहं च तान्वराल्लब्ध्वा कृतार्थोऽस्मि द्विजर्षभ ॥२४॥

अतस्तद्दिनमारभ्य पार्वती भुवनेश्वरी ।

मत्सङ्गाद्वृष्णवी भूत्वा मामापृच्छत्सुरेश्वरी ॥२५॥

भवान्महाभागवतः कुमाराद्याश्च मे गणाः ।

कुबेराद्या देवताश्च नन्दीशाद्याश्च मे गणाः ॥२६॥

पृथगपृथगपृच्छन्मां कृष्णपादाम्बुजाश्रयाः ।

कथाः परमकल्याणीः सर्वलोकैकपावनीः ॥२७॥

अथ मां पृच्छती वाक्यं मद्वाक्यं च द्विजोत्तम ।

संलिखत्यप्रमत्तोऽसौ गणेशो मत्पुतोऽस्तिके ॥२८॥

मम तेषां च संवादं कला लोकमनोहराः ।
 अभवैस्तत्र शास्त्राणि सर्वलोकहितानि वै ॥२९॥
 तानि तन्त्राणि श्रोतारः समानीय महीतले ।
 स्थाने स्थाने मुनिश्रेष्ठ कथयिष्यन्ति भूरिशः ॥३०॥
 त्वमप्येनं सात्वताख्यं तन्त्रं भगवतः प्रियम् ।
 नैमिषे शौनकादीनां समक्षं कथयिष्यसि ॥३१॥

श्रीनारद उवाच

श्रुतं भगवतो वक्रात्तन्त्रं सात्वमुत्तमम् ।
 तस्मिन्हसानिषेधं च श्रुत्वा मे संशयोऽभवत् ॥३२॥
 वेदेन विहिता हिंसा पशूनां यज्ञकर्मणि ।
 यज्ञे वधोऽवधश्चैव वेदविद्विर्निरूपितः ॥३३॥
 तन्निषेधे कथं श्रौतं स्मार्तं कर्म महेश्वर ।
 वर्तेत सर्वलोकस्य इहामुत्रफलप्रदम् ॥३४॥

श्रीशिव उवाच

प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वर्णितम् ।
 श्रुत्या स्मृत्या च विप्रेन्द्र काम्यं कामिजनाय वै ॥३५॥
 प्रवृत्तमविरोधेन कुर्वन्स्वर्याति मानवः ।
 पुण्यावशेषे भूपृष्ठे कर्मसंज्ञिषु जायते ॥३६॥
 निवृत्तमाचरन् योगी भोगेच्छात्यक्तमानसः ।
 प्रयाति परमां सिद्धिं यतो नावर्तते गतः ॥३७॥
 अतः प्रवृत्तिनिष्ठस्य नानाकामानुरागिणः ।
 षड्विधैर्नियमैर्विप्राभ्यनुज्ञैव (प्र)दर्शिता ॥३८॥
 विधिर्नैवास्ति हिंसायामभ्यनुज्ञा यतः कृता ।
 अतो निवृत्तिर्हिंसायां यज्ञेऽपि कथिता बुधैः ॥३९॥
 अहिंसा परमो धर्मः सर्ववर्णाश्रमादितः ।
 स च आचरितो नृणामभीष्टफलदो भवेत् ॥४०॥

विशेषतो विष्णुभक्ता हिंसाकर्मं त्यजन्ति हि ।
 अहिंसया हि भूतानां भगवानाशु तुष्यति ॥४१॥
 अतः सर्वेषु भूतेषु भगवानखिलेश्वरः ।
 प्रविष्ट ईयते नानारूपैः स्थावरजङ्गमैः ॥४२॥
 मयापि ह्यागमे हिंसा विहिता या विधानतः ।
 सापि कामुकलोकानां कामिताफलसिद्धये ॥४३॥
 विष्णुभक्ता न वाञ्छन्ति मत्तोऽपि कियदेव हि ।
 अतस्तेषां विधानेऽपि हिंसा निन्द्या प्रकीर्तिता ॥४४॥
 अतस्त्वं काम्यकर्माणि परित्यज्य विशेषतः ।
 श्रूयाः कृष्णकथाः पुण्याः सर्वलोकेऽसिद्धिदाः ॥४५॥
 प्रवृत्तशालं शृणुयाद्यच्छ्रुत्वा तत्तरो भवेत् ।
 निवृत्तेऽपि हरेर्भक्तियुतं मुख्यं प्रकीर्तितम् ॥४६॥
 विशेषतः कृष्णलीलाकथा लोकमुमङ्गलाः ।
 कीर्तयस्व द्विजश्रेष्ठ श्रूयाश्चैव निरन्तरम् ॥४७॥
 हित्वान्यदेवशरणं भजनं च विशेषतः ।
 ये भजन्ति हरेः पादं कृष्णैकशरणं नराः ॥४८॥
 इहामुत्र ते नित्यं कृतार्था भगवत्प्रियाः ।
 परमानन्दसन्दोहं प्राप्नुवन्ति निरन्तरम् ॥४९॥
 ये तु नैवंविदोऽज्ञान्ता मूढाः पण्डितमानिनः ।
 यजन्त्यविरतं देवान्पशून्हत्वा सुखेच्छया ॥५०॥
 कामभोगावसाने तं ते च्छेत्स्यन्ति विनिश्चितम् ।
 इत्येतत्कथितं विप्र तन्त्रं सात्वतमुत्तमम् ॥५१॥
 विष्णुभक्तजनाजीव्यं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।
 श्रवणात्कीर्तनादस्य कृष्णे भक्तिर्हि जायते ॥५२॥
 भक्तिं लब्धवतः साधो किमन्यदवशिष्यते ।
 यतो भगवता प्रोक्तं तस्य भक्तिविवर्द्धनम् ॥५३॥
 तन्त्रेऽस्मिन्कथितं विप्र विश्वसम्भवमुत्तमम् ।
 अवताराश्च श्रीविष्णोः सम्पूर्णशकलाभिदा ॥५४॥

भक्तिभेदाश्च भेदानां लक्षणं च पृथग्विधम् ।
 युगानुरूपं श्रीविष्णोः सेवया मोक्षसाधनम् ॥५५॥
 विष्णोर्नामसहस्रं च नाममाहात्म्यमुत्तमम् ।
 विष्णोर्नाम्ना वैष्णवानामपराधस्य च निष्कृतिः ॥५६॥
 सर्वसाररहस्यं च तन्त्रोत्पत्तेश्च कारणम् ।
 हिंसाविधिनिषेधं च तव प्रश्नानुसारतः ॥५७॥
 यन्नामैकं कर्णमूलं प्रविष्टं
 वाचान्विष्टं चेतनासु स्मृतं वा ।
 दध्वा पापं शुद्धसत्त्वात्तदेहं
 कृत्वा साक्षात्संविद्यतेऽनवद्यम् ॥५८॥
 तस्मादनन्ताय जनार्दनाय
 वेदेरितानन्तगुणाकराय ।
 महानुभावाय निरञ्जनाय नित्यात्म-
 लामाय नमो नमस्ते ॥५९॥

इति श्रीसात्वततन्त्रे श्रीशिवनारदसंवादे शिवाप्रार्थितगणेशलिखिते
 सात्वतजनप्रिये नवमः पटलः ॥

